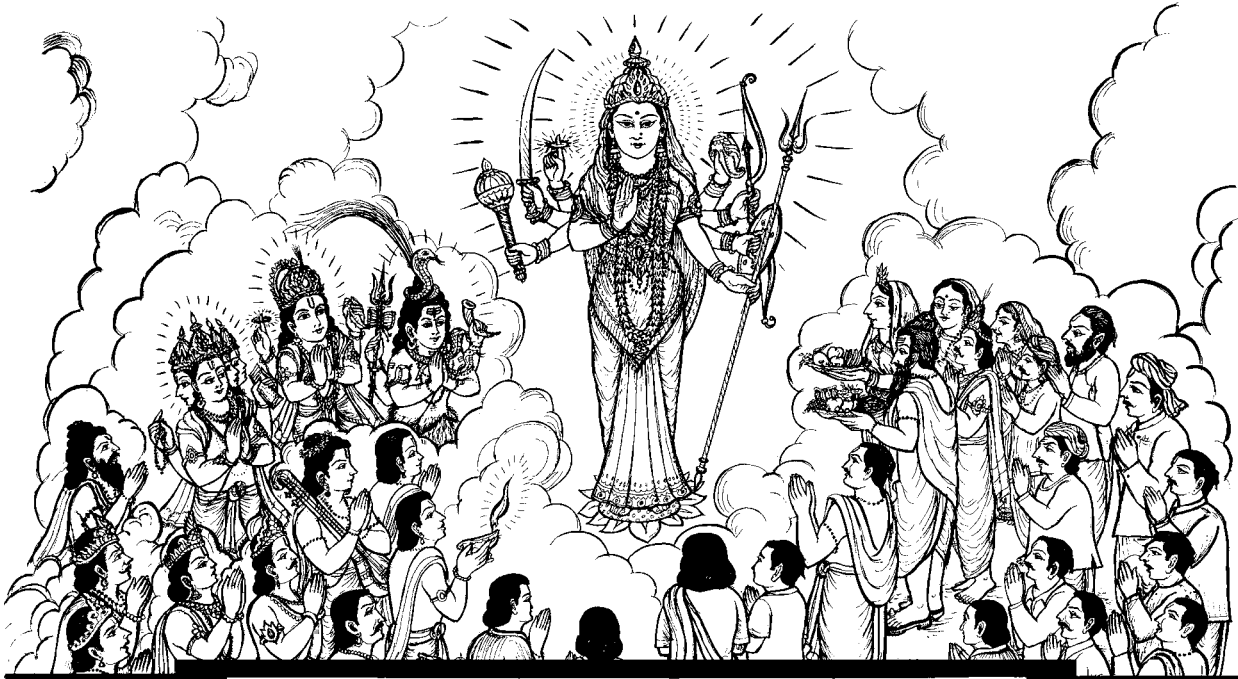


ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः । दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः ॥
नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः । विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे ॥

वर्ष

८३

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०६६, श्रीकृष्ण-सं० ५२३५, मई २००९ ई०

संख्या

५

पूर्ण संख्या ९९०

कृष्णप्रिया श्रीयमुनाजीका ध्यान

श्यामामम्भोजनेत्रां सघनघनरुचिं रत्नमञ्जीरकूजत्
काञ्चीकेयूरयुक्तां कनकमणिमये बिभ्रतीं कुण्डले द्वे ।
भ्राजच्छीनीलवस्त्रां स्फुरदमलचलद्भारभारां मनोज्ञां
ध्याये मार्तण्डपुत्रीं तनुकिरणचयोद्दीप्तदीपाभिरामाम् ॥

जो श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थावाली) हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलकी शोभाको छीने लेते हैं, घनीभूत मेघके समान जिनकी नील कान्ति है, जो रत्नोंद्वारा निर्मित बजते हुए नूपुर और झनकारती हुई करधनी एवं केयूर आदि आभूषणोंसे युक्त हैं तथा कानोंमें सुवर्ण एवं मणिनिर्मित दो कुण्डल धारण करती हैं, दीप्तिमती नीली साड़ीपर चमकते हुए गजमौक्तिकके चंचल हारका भार वहन करनेसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं, शरीरसे छिटकती हुई किरणोंकी राशिसे उद्दीप्त होनेके कारण जिनकी प्रज्वलित दीपमालाके समान शोभा हो रही है, उन सूर्यनन्दिनी यमुनाजीका मैं ध्यान करता हूँ। (गर्गसंहिता)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण २, २५, ०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०६६, श्रीकृष्ण-सं० ५२३५, मई २००९ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- कृष्णप्रिया श्रीयमुनाजीका ध्यान	६४९
२- कल्याण (शिव)	६५१
३- सर्वोपयोगी प्रश्न (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६५२
४- 'मोर भयो मन मोर' [कविता] (आचार्य श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश')	६५४
५- अपने इष्टदेवका निर्णय (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	६५५
६- निर्गुण निराकार ब्रह्मत्व और उसकी प्राप्ति का साधन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६५६
७- जीवनका मोल [कविता] (स्व० श्रीसज्जनजी कविरत्न) [प्रेषक—डॉ० श्रीसत्येन्द्रजी पारीक]	६५८
८- नाम-साधना (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर) [संग्राहक—श्री गो०सी० गोखले]	६५९
९- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६६१
१०- सन्त-उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	६६२
११- विचारणीय बातें (आचार्य पं० श्रीजालेश्वरजी महाराज)	६६२
१२- 'बटोही धीरे-धीरे चल' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	६६३
१३- राजभवनके यतिराज (आचार्य श्रीसोहनलालजी रामरंग) ...	६६५
१४- देह रहते हुए विदेही क्यों? [प्रेरक-प्रसंग] (श्रीशरद् चन्द्रजी पेंढारकर, एम०ए०)	६६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१५- सुख-सन्तोषका जीवन कैसे जीयें (डॉ० श्रीकपिलदेवसिंहजी, पी-एच०डी०)	६६८
१६- प्रसन्नता—एक जीवन-दर्शन (डॉ० श्रीविद्याभास्करजी वाजपेयी)	६७१
१७- 'मूढ मन तजत न विषय-विकार' [कविता] (पं० श्रीदेवकृष्णजी पाण्डेय)	६७४
१८- क्षीरसागर (सुश्री आशा सक्सेना)	६७५
१९- गाय शत-प्रतिशत बच सकती है (श्रीमुलखराजजी विरमानी)	६७६
२०- रोगमें भी भगवत्कृपाका अनुभव करें (श्रीघनश्यामदासजी मोदानी, बी०ए०, एल-एल० बी०) ...	६७८
२१- राम ते अधिक राम कर दासा (श्री एन०एल० बंसलजी) ...	६८१
२२- कवि एवं भक्तशिरोमणि श्रीधन्नाजट्टजी (श्रीबलविन्द्रजी 'बालम')	६८२
२३- प्रोपकार (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	६८३
२४- ब्रजगंगाओंका नयनभाव (श्रीब्रजोरसिंहजी, एम०ए०)	६८४
२५- साधनोपयोगी पत्र	६८७
२६- व्रतोत्सव-पर्व [श्रावणमासके व्रत-पर्व]	६९०
२७- कृपानुभूति	६९१
२८- पढ़ो, समझो और करो	६९३
२९- मनन करने योग्य [प्रेषक—श्रीलखीरामजी अग्रवाल]	६९६

चित्र-सूची

१- शक्तिसहित श्रीमहागणपति	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- कृष्णप्रिया श्रीयमुनाजीका ध्यान	(")	मुख-पृष्ठ
३- वनगमनसे पूर्व लक्ष्मणको उपदेश देते हुए श्रीराम	(इकरंगा)	६७०
४- धन्नाजट्टजी	(")	६८२



वार्षिक शुल्क
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
विदेशमें—सजिल्द

US\$25 (Rs.1250) (Sea Mail)
US\$40 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

विदेशके लिये पंचवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते ।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ७५० रु०
सजिल्द ८५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org

e-mail : Kalyan@gitapress.org

☎ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें ।

सर्वोपयोगी प्रश्न

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक सज्जनने कुछ उपयोगी प्रश्न किये हैं, यहाँ वे उत्तरसहित प्रकाशित किये जाते हैं—

(१) प्रश्न—सच्चा वैराग्य किस प्रकार हो?

उत्तर—संसारके सम्पूर्ण पदार्थ क्षणभंगुर और नाशवान् होनेके कारण दुःखप्रद और अनित्य हैं, इस रहस्यको सच्चे वैराग्यवान् पुरुषोंके संगसे समझनेपर सच्चा वैराग्य हो सकता है।

(२) प्रश्न—ईश्वर-प्राप्ति पुरुषार्थ और भगवत्कृपाद्वारा होती है, वह पुरुषार्थ किस प्रकार किया जाय और भगवत्कृपा किस तरह समझी जाय?

उत्तर—सर्वव्यापी विज्ञानानन्दधन भगवान्की सब प्रकारसे शरण होना ही असली पुरुषार्थ है। अतएव भगवान्की शरण होनेके लिये वैराग्ययुक्त चित्तसे तत्पर होना चाहिये। भगवान्के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान, उनकी आज्ञाका पालन और सुख-दुःखोंकी प्राप्तिके साधनोंमें एवं सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें उन परमात्माकी कृपाका पद-पदपर अनुभव करनेका नाम शरण है और उनकी शरण होनेसे ही उनकी कृपाका रहस्य समझमें आ सकता है।

(३) प्रश्न—ईश्वरके दर्शन और प्राप्तिका सहज उपाय क्या है?

उत्तर—अनन्य-भक्ति ही सहज उपाय है। भगवान्ने कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥

(गीता ११।५४)

‘हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्य-भक्तिके द्वारा तो मैं इस प्रकार प्रत्यक्ष देखा जा सकता हूँ, तत्त्वसे जाना जा सकता हूँ तथा एकीभावसे प्राप्त भी किया जा सकता हूँ।’

अनन्य-भक्तिका स्वरूप यह है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११।५५)

‘हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे लिये ही कर्म करता

है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिसे रहित है और सम्पूर्ण प्राणियोंमें वैराग्यसे रहित है, वह (अनन्य भक्तिवाला पुरुष) मुझको (ही) प्राप्त होता है।’

सर्वव्यापी विज्ञानानन्दधन परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति तो ज्ञानयोगद्वारा भी हो सकती है। परंतु सगुण रूपके साक्षात् दर्शन केवल ईश्वरकी अनन्य-भक्तिसे ही होते हैं। अनन्य-भक्ति और अनन्य-शरण वस्तुतः एक ही है। परंतु व्याख्या करते समय शरणकी व्याख्यामें अनन्य-भक्तिका और अनन्य-भक्तिकी व्याख्यामें अनन्य-शरणका वर्णन हुआ करता है। जैसे उपर्युक्त श्लोकके ‘मत्परमः’ शब्दसे भगवत्-शरणका कथन किया गया है, वैसे ही गीता अध्याय ९ के ३४वें श्लोकमें शरणके अन्तर्गत अनन्य-भक्तिका कथन आया है। गीता अध्याय ९ के ३२वें श्लोकमें भगवान्ने अर्जुनसे कहा— स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले (अन्त्यज) भी मेरी शरण होकर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

इस उपदेशके बाद आगे चलकर भगवान्ने ३४वें श्लोकमें शरणका स्वरूप इस प्रकार बतलाया—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः॥

‘मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त हो, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझे प्रणाम कर। इस प्रकार मेरे शरण हुआ (तू) आत्माको मुझमें एकीभाव करके मुझको ही प्राप्त होगा।’

यों तो इस सारे ही श्लोकमें ‘शरण’ के नामसे अनन्य-भक्तिका ही वर्णन है, परंतु ‘मद्भक्तो भव’ शब्दसे स्पष्टरूपमें भक्तिका कथन है।

(४) प्रश्न—मनुष्य ईश्वरकी जरूरत क्यों नहीं समझता और उस जरूरतके समझनेका उपाय क्या है?

उत्तर—ईश्वरके स्वरूप, रहस्य, स्वभाव, गुण, प्रभाव और तत्त्वको न जाननेके कारण ही ईश्वरकी जरूरत मनुष्यकी समझमें नहीं आती। इस अज्ञानके नाश होते ही जरूरत

उत्तर—पूर्वसंचित उत्तम कर्मोंके समुदायसे, भगवान्के भक्तोंमें सच्ची श्रद्धा होनेसे एवं भगवान् और भगवद्भक्तोंकी कृपासे सच्चे भक्तोंके दर्शन होते हैं।

चंचल नैन, चितौनि है चंचल, चंचल है चितचोर।
श्याम बड़ो घनश्याम सुहावन, मोर भयो मन मोर॥
जाको कहैं जन नन्द कौ नन्दन,
जाको कहैं जन दुष्ट-निकन्दन
जाकौ करैं विधि-वेदहूँ वन्दन
सो हरि है त्रैताप कौ चन्दन,
पेखत ही मुख कौं दुख भाजत, लोचन होत चकोर।
श्याम बड़ो घनश्याम सुहावन, मोर भयो मन मोर॥
मोहन मादन वेणु बजावत,
जात जहाँ, तहँ आनँद छावत,
पंख मयूर कौ शीश सजावत,
रूप लखे शत काम लजावत,
पीतपटा नवनीत कलेवर, लोकनि मैं छबि-छोर।
श्याम बड़ो घनश्याम सुहावन, मोर भयो मन मोर॥
श्याम सदा जन कौं भय-भंजन,
श्याम सनेहिन कौं मनरंजन,
श्याम करै कलि-कंस कौ गंजन,
अंजन रूप, पै ब्रह्म निरंजन,
जाको हिये सुमिरे उरसिंधु में बाढ़त हर्ष-हिलोर।
श्याम बड़ो घनश्याम सुहावन, मोर भयो मन मोर॥

अपने इष्टदेवका निर्णय

(ब्रह्मलीन धर्मसम्प्रदाय स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

कोई जिज्ञासु ऐसा प्रश्न कर सकता है कि भगवान् शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि देवताओंमेंसे किसकी उपासना करनी चाहिये ? कोई किसीको तो कोई किसीको बड़ा बतलाता है। ऐसी स्थितिमें बुद्धि व्याकुल हो जाती है। इसका उत्तर यही हो सकता है कि भगवान्के विचित्र प्रपंचमें विचित्र स्वभावके जीवोंका निवास है, इसलिये श्रीभगवान् भिन्न स्वभाववाले जीवोंकी विभिन्न रुचियोंका अनुसरण करके विभिन्न रूपमें प्रकट होते हैं। किसीका चित्त भगवान्के किसी स्वरूपमें खिंचता है, किसीका किसीमें। वेदपुराणादि शास्त्रोंमें सर्वोत्कृष्टरूपसे प्रतिपादित सभी रूप भगवान्के ही हैं। अतः जिस रूपमें प्रीति हो, उसी रूपकी उपासना करनी चाहिये। अनभिज्ञ लोग एक रूपकी निन्दा और दूसरे रूपकी प्रशंसा करते हैं, अभिज्ञ तो सभी रूपमें अपने प्रभुको ही देखकर सन्तुष्ट होते हैं। जैसे कोई व्यक्ति अनेक विधाओंमें निपुण होनेके कारण अपने अनेक वेष और नामोंसे अनेक कार्य करता हो, भिन्न-भिन्न कार्यार्थी पृथक् वेष और नामवाले रूपके अनुरागी हैं और उसे ही सर्वोत्कृष्ट समझने लगें। दूसरे लोग दूसरे वेष और नामवाले रूपके अनुरागी हों। उनमें कुछ लोग किसी रूपके प्रशंसक हों और कुछ किसीके निन्दक हों, इसलिये परस्पर युद्ध होने लगे तो वहाँ जो लोग वस्तु-स्थितिको जाननेवाले होंगे, वे तो दोनों ही विवादी दलोंकी मूर्खतापर परिहास करेंगे; क्योंकि वे दोनों ही वेषोंमें एक ही तत्त्वको देखते हैं।

‘योगवासिष्ठ’ के विपश्चिदाख्यानमें मृगरूपसे समागत विपश्चित्को देखकर श्रीवसिष्ठजीने यही विचार किया था कि जिस व्यक्तिका जो स्वरूप कभी भी उपास्य हो, उसका कल्याण उसके ही द्वारा सुगम होता है। यह समझकर करोड़ों जन्मके पहले अग्निकी उपासना करनेवाले मृगरूप विपश्चित्के सामने अपने योगबलसे उन्होंने अग्निका प्राकट्य किया। अग्निका दर्शन होते ही वह मृग ऐसी स्नेहभरी दृष्टिसे अग्निको देखने लगा, जैसे अग्निके साथ उसका कोई बहुत पुराना सम्बन्ध हो। अनन्तर वसिष्ठजीकी कृपासे उसका कल्याण हुआ। अस्तु, प्रकृतमें कहना यही है कि स्वप्नदर्शन तथा माहात्म्यश्रवण आदिसे चित्तका आकर्षण देखकर अपने इष्टदेवका निर्णय करना चाहिये। यह स्पष्ट है कि अनेक जन्मके साधनोंसे प्राणीकी उपासनामें उन्नति होती है। जन्म-जन्ममें मार्ग-परिवर्तन करनेसे यथेष्ट लाभ सम्भव नहीं है। अतः पूर्वकी उपासनाके संस्कारका ज्ञान करके उसी उपासनामें प्रवृत्त होना चाहिये। पितृ-पितामह-परम्पराकी उपासनाओंके अनुसार ही प्राणीको उपासना करनी चाहिये।

वर्तमान जन्मकी सत्प्रवृत्ति और दुष्प्रवृत्तिमें पिछले जन्मोंके संस्कार भी अपेक्षित होते हैं। यदि किसीको दुर्दैववश किसी ऐसे देश-कालमें, ऐसे माता-पिता, गुरुजनों तथा ग्रन्थोंका संसर्ग हुआ कि जिनसे दुराचार-दुर्विचारको ही उत्तेजना मिली, तो उस व्यक्तिके लिये दुःसंग और असद् विचारवाले शास्त्रोंको छोड़कर सत्पुरुषसंग, सच्छास्त्रका अभ्यास एवं तदनुसार सदाचार-सद्बिचारके सम्पादनमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। जिसे पूर्व संस्कारके अनुसार शुद्ध विचारवाले देशकाल तथा माता-पिता, गुरुजनोंका संयोग प्राप्त हुआ और सच्छास्त्र ही अध्ययन करनेको मिले, उसके लिये सदाचार-सद्बिचारकी वृद्धिमें बड़ी सहायता मिलती है। इसलिये प्रायः सन्मार्गस्थ सदाचारीको उसकी भावना और उपासनाके अनुसार ही समीचीन देशकाल और माता-पिता तथा शास्त्रोंका संसर्ग मिलता है। इसी बातकी इंगना श्रीभगवान्ने ‘शुचीनां श्रीमतां गेहे’, ‘अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्’ ‘पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः’ इत्यादि वचनोंसे की है। इसलिये यह बहुत सम्भव है कि हमारी उपासनाके अनुकूल ही कुलमें हमारा जन्म हुआ हो। अतः हमें माता-पिता, गुरुजनोंके अनुसार ही उपासना करनी चाहिये।

यों भी इस बातके समझनेमें सुगमता होगी कि जैसे कोई पुरुष किसी अपरिचित मार्गसे किसी अभीष्ट देशमें जा रहा हो, प्रश्न करनेपर सभी अपने मार्गको ही निर्विघ्न बतलाते हों, साथ ही दूसरे मार्गोंको नाना प्रकारके सिंह-व्याघ्र-सर्प-वृश्चिक-कण्टकाकीर्ण गर्तोंसे उपद्रुत बतलाते हों, ऐसी स्थितिमें यदि जाना आवश्यक ही हो, तो वह प्राणी किस मार्गका अवलम्बन करेगा ? समझदार तो यही कहेंगे कि उन मार्गानुगामियोंमेंसे अधिक विश्वास उन्हींपर किया जा सकता है, जो अपने राष्ट्र, प्रान्त तथा ग्रामके हों या अपने कुटुम्बियोंमेंसे हों। यह बात दूसरी है कि जब बहुत विशिष्ट अनुभवोंसे उस मार्गके दूषित तथा मार्गान्तरके निर्विघ्न होनेकी बात निश्चित हो गयी हो, तब किसी दूसरे मार्गका अवलम्बन किया जाय।

इसलिये भी अपनी पितृ-पितामह-परम्परामें जो उपासना और आचार तथा शास्त्र मान्य हों, वही उचित है। वेदने भी ‘किंस्वित् पुत्रेभ्यः पितरावुपावतुः’ इस वाक्यसे परम्परागत आचारका समर्थन किया है। श्रीनीलकण्ठजीने इसका यही अभिप्राय बतलाया है कि पुत्रके हितके लिये माता, पिता या पितामहप्रभृतिने जिस व्रतका पालन या जिस देवताकी उपासना की हो, उस पुत्रको उसी व्रत या देवताका अवलम्बन करना चाहिये।

निर्गुण निराकार ब्रह्मत्व और उसकी प्राप्तिका साधन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गतांक पृ०सं० ६१० से आगे]

भगवान्की लीला ब्रह्मलीला भी है। भगवान्की आकृति भी लीला है। इन भगवान्की लीला रामलीला भी है। भगवान्की लीला शिवलीला भी है, देवीलीला भी है। जितनी लीलाएँ हैं वे सभी एक भगवान्की लीला हैं, वे भगवान् निर्गुण और सगुण दोनों कैसे ? इसका एक दूसरा तत्त्व है। यह बात पद्मपुराणमें आयी है। पद्मपुराणमें भगवान् शंकरने स्तुतिमें कहा कि लोग तो आपको निर्गुण कहते हैं और निराकार कहते हैं, परंतु आप तो सगुण और साकार रूपमें हमारे सामने हैं। और, आप कहते हैं कि हम वही हैं। इसमें क्या रहस्य है ? यह सीधा संवाद है, कोई स्थानान्तरण नहीं है। उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा—‘शिवजी ! इसे चाहे जो समझें। यह जो त्रिगुणके गुण हैं—सत्, रज और तम, इन गुणोंवाले जो गुण हैं, वे सारे गुण जगत्में हैं। इन गुणोंसे जो सगुण है, वह दूसरा है। ये गुण मुझमें नहीं हैं। मेरा जो भगवत्स्वरूपभूत गुण है, वह मुझमें हमेशा है।’ अगर ऐसा न हो तो भगवत्ता नहीं।

कोई भी क्या इस बातको कह सकता है कि ब्रह्म भी है और सच्चिदानन्दरूप भी है। निर्गुणवादी भी कोई यह कह दे कि हमारा ब्रह्म शून्य है तो बौद्धोंका शून्य होगा, शांकर वेदान्तका नहीं है। वह तो सत्तामय है, चिन्मय है, आनन्दमय है। सत्ता, चिन्मयता और आनन्दमयता—ये तीनों ब्रह्मके स्वरूप हैं। उस स्वरूपसे अधिक स्वरूपभूतगुणका क्या अर्थ है? स्वरूपभूतगुण गुण नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद्में ब्रह्मके आठ लक्षण बताये गये हैं। वे आठ गुण जिसमें हैं वह ब्रह्म है। यद्यपि ब्रह्मके जो गुण हैं, वे ब्रह्मकी सत्तासे भिन्न नहीं हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्णके जो गुण हैं, वे श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्णका जो स्वरूप है—नीलविग्रह—आकार—यह आकार पांचभौतिक नहीं है। यह हानोपादानरहित—बनने-बिगड़नेवाला नहीं है। इसीलिये गीता (४।६)—में कहा है—

‘अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।’

यहाँ 'सन्' शब्द आया है। अज रहते हुए जन्म लेते हैं। अविनाशी रहते हुए अन्तर्धान होते हैं। सारे जीवोंके महान् ईश्वर रहते हुए भी नन्दबाबाके बालक बनकर उनके शासनमें

रहते हैं। यह क्या चीज है ? क्या वे बदल गये ? क्या उनमें अज्ञान आ गया ? नहीं। यह उनका स्वरूपभूतगुण है। प्राकृतिक गुण उनमें नहीं है, इसलिये वे निर्गुण हैं। प्रकृति—माँके पेटमें बना मेरा आकार नहीं है, इसलिये मैं निराकार हूँ—

‘स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।’

(श्रीमद्भा० १०।१४।२)

श्रीमद्भागवतमें ब्रह्माजीने स्तुति करते हुए कहा कि प्रभो! आपका जो यह शरीर है, यह स्वेच्छामय है, पांचभौतिक नहीं है।

चिदानंदमय देह तुम्हारी । बिगत बिकार जान अधिकारी ॥

(रा०च०मा० २।१२७।५)

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—हे रामचन्द्र! आपका जो यह शरीर है यह चिदानन्दमय है। यह विगतविकार है— इसमें कभी विकार पैदा ही नहीं होता। निर्विकार है— आपके जो गुण हैं, वे प्राकृतिक गुण नहीं हैं। इसलिये भगवान् सगुण होते हुए भी स्व-गुणयुक्त हैं। उनके गुण उनके स्वरूपसे अभिन्न हैं। उनके हस्त, पाद, करादि समस्त अंग चिन्मय हैं। वे कानसे चल सकते हैं और वे पैरसे देख सकते हैं। उनके जितने भी अंग-अवयव हैं वे सब-के-सब चिन्मय हैं, सन्मय हैं, नित्य हैं और आनन्दमय हैं। यह शास्त्रमें आया है कि सभी आनन्दमय हैं। उनका पैर भी आनन्दमय, उनका श्रीमुख भी आनन्दमय और उनकी वाणी भी आनन्दमय है और उन आनन्दमयकी जो आत्मा है उसका नाम ‘राधा’ है।

हमारे ब्रह्म जो हैं जिनकी बात ऊपर वर्णित है, वे ब्रह्म हमारे श्रीकृष्णकी लीला हैं। ब्रह्म वही हैं। इस ब्रह्मके अलावा दूसरा कोई बता नहीं सकता। अज्ञातवादी भी नहीं बता सकेगा। वह कहेगा कि यह नित्य सत्य वस्तु है, और कोई वस्तु पैदा नहीं हुई है। हम भी यही कहते हैं कि और कोई वस्तु पैदा हुई नहीं। जो अज्ञातवाद है, वह यही है कि कोई पैदा नहीं हुआ। पैदा कहाँ हुआ? यह तो लीला है। लीलामयकी लीला है। ब्रह्मसूत्रका सूत्र है—

मोक्ष दरवाजेपर आकर सोया करता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।

सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो॥

(विनय-पत्रिका २२६)

इसका अर्थ यह है कि अनन्त योनियोंसे बड़े-बड़े साधनोंकी जूठी पत्तलें कुत्तेकी भाँति चाटा करता था, परंतु कहीं नहीं पेट भरा। वही मैं, भगवान्‌का स्मरण करनेपर क्या हो गया? सुधारस—मुक्तिरस—अमृततत्त्व मेरे सामने परोसा रखा है, परंतु मैं लेना नहीं चाहता। यह मुक्ति कहती है कि हमें स्वीकार कर लो, अमिय रस कहता है हमें पी जाओ, परंतु मैं कहता हूँ कि मुझे और रस नहीं चाहिये, मैं तो केवल राम-रस पीऊँगा।

‘दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥’

(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

भगवान् कहते हैं—मेरी सेवाको छोड़कर मेरे भक्त देनेपर भी मुक्तिको स्वीकार नहीं करते।

‘मुक्ति निरादर भगति लुभाने’—मुक्तिको त्यागकर प्रेम करना चाहते हैं। इसलिये प्रेममें वैराग्यका भी वैराग्य होता है।

‘ब्रजरज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक्त है जाय’

बेचारी मुक्ति बन्धनमें रहती है। मुक्ति किसीकी हो गयी तो मुक्तिको मुक्त कौन करे? मुक्तिको मुक्त कर दिया—ब्रजधूलिने। ब्रजरजके उड़कर मस्तकपर आते ही बेचारी मुक्ति मुक्त हो जाती है, फिर मुक्तिका कोई बन्धन नहीं रहता। प्रेमीके सामने मुक्ति घूमा करती है, लेकिन वह भक्त कहता है कि तुम घूमो। अब हम तुमको नहीं बाँधेंगे। मुझसे मेरे श्यामसुन्दर बाँध गये हैं। मुक्तिमें बन्धनको तोड़ना है और प्रेममें श्रीकृष्णको बन्धनमें बाँधना है—यह अन्तर है। [समाप्त]

जीवनका मोल

(स्व० श्रीसज्जनजी कविरत्न)

दिखा के मंगल-मंजुल-मूर्ति
 छुपे हो कहाँ, कहो, किस ठोर ?
 निहारें टक-टक व्याकुल नयन
 तड़पता दर्शन को मन-मोर ॥
 छलकता जीवन का प्याला
 टूटती है आशा की डोर ।
 गगन से हँसते हैं नक्षत्र
 तुम्हारी लख निष्ठुरता घोर ॥
 उठा है मानस में तूफान
 मचा है चहुँ-दिश हाहाकार ।
 प्रलय के छाये घन घनघोर
 निराशामय हे प्राणाधार ॥
 सभी इच्छाएँ भस्मीभूत
 हुई जाती हैं मेरी, श्याम !
 धरुँ अब धीर कहो, कैसे ?
 नहीं मन-मानस में आराम ॥
 भटकते फिरते बन-बन में
 ढूँढ़ने निशि-दिन पागल प्राण ।
 हृदय में ध्यान, नयन में प्राण
 लगा है जब से विरही-बाण ॥

निठुर! तुम कैसे निष्ठुर हो ?
न लेते सुध, हो बैठे मौन ।
लगन, चिन्तन में जिसकी हो,
कहो, ऐसा है 'प्रेमी' कौन ? ॥
स्मरण है भूत-पूर्व की बात ?
लता-कुंजों में जब चुपचाप ।
चले आये चोरों की भाँति
सुनाने अपना प्रेम-प्रलाप ॥
मधुर वीणा की सुन झंकार
मेरा यह भोला-भाला मन ।
किया था प्रथम मिलन ही में
समर्पित अपना जीवन-धन ॥
उसी दिन को क्या भूल गये ?
हाथ में लेकर मेरा हाथ ।
कहा था—'प्राणवल्लभे प्राण !'
रहूँगा सदा तुम्हारे साथ ॥
भला, यह फिर कैसा प्रतिकार ?
बता दो, मुख से कुछ तो बोल ।
तड़पना रोना, बिलखना ही
यही है क्या जीवन का मोल ? ॥

[प्रेषक—डॉ० श्रीसत्येन्द्रजी पारीक]

रामचरणके प्रति दृढ़ विश्वास ही परमार्थकी असली पूँजी है। ऐहिक व्यवहारमें रामका स्मरण ही परमार्थके लिये असली सीख है। मनकी यही प्रवृत्ति होनी चाहिये कि मेरा हित भगवान्‌के हाथमें है। यह भावना हमारे मनमें होनी चाहिये कि राम ही कर्ता-धर्ता हैं और राम जो करेंगे वह मेरे हितका ही होगा। रामचरणके प्रति हमारी श्रद्धा होनी चाहिये लेकिन व्यवहार कभी गलत नहीं करना चाहिये। रामकी अनुभूति रखना ही परमार्थका प्रमुख पथ है। बाहरसे व्यवहारमें गृहस्थीका काम करना चाहिये लेकिन भीतर रघुपतिके प्रति दृढ़ भाव हो। प्रयत्न करना हमारे हाथमें है, सफलता भगवान्‌के हाथमें है। जी-जानसे प्रयत्न करना चाहिये, लेकिन यह भावना दृढ़ होनी चाहिये, कि हमारे आगे-पीछे भगवान्‌ खड़े हैं। गृहस्थीमें चतुराईसे व्यवहार करना चाहिये। कभी हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। भगवान्‌का आधार मानकर निर्भ्रांत होना चाहिये। माता तो घरमें काममें लगी रहती है लेकिन उसका चित्त बालकमें होता है, वैसे ही हमें भी काममें लग जाना चाहिये, किंतु हमारा मन भगवान्‌के चिन्तनमें हो। सारी शक्तिसे गृहस्थी सँभालनी चाहिये लेकिन मन रघुनाथकी आराधनामें लीन होना चाहिये। हमारा आचरण नीति और धर्मके अनुसार होना चाहिये किंतु अन्तःकरणमें पवित्र भाव हो। कर्तव्य-तत्परता और भगवान्‌की अनुभूति रखना ही सच्चा परमार्थ है। व्यवहार दक्षता-पूर्वक करनेपर भी हम यदि परमात्माको भूल गये तो पूरा व्यवहार दुःखदायक ही होगा। [संग्रहक — श्री गो० सी० गोखले]

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गतांक पृ०-सं० ६१५ से आगे]

अपना आचरण, भाव ठीक रखो, लोग चाहे जो कहें। कपड़ा लोक-सुहावता (लोक-मर्यादाके अनुसार) पहनो और रोटी शरीर-सुहावती खाओ। अपने आचरण, भावकी तरफ देखकर सन्तोष करो, लोगोंकी तरफ मत देखो। अपना आचरण बेठीक हो तो सुधार कर लो। मेरे दादागुरु कहा करते थे कि स्त्रियोंको सब कपड़े नये नहीं पहनने चाहिये, एक-दो पुराने कपड़े भी रखने चाहिये।

अपने भजनमें लगे रहो। संसारमें क्या हो रहा है और क्या होगा—इसकी चिन्ता मत करो—‘**होइहि सोइ जो राम रचि राखा**’ (मानस, बाल० ५२।४)। भजनमें लग जाओ, निर्वाहकी चिन्ता मत करो। आज भजनमें लग जाओ और कल मृत्यु हो जाय तो आपका उम्रभर भजन हो गया।

पुरानी बात कही जाय तो समझे कि कुछ-न-कुछ घाटा पड़ गया है।

जैसे वैद्य जो दवा दे, वही बढ़िया है, ऐसे ही भगवान् जो विधान करें, वही बढ़िया है।

वस्तु, व्यक्ति, काल आदि सब उस परमात्माके अन्तर्गत हैं। परमात्मा इन सबसे अतीत भी है और इन सबमें परिपूर्ण भी है। जड़तासे ऊँचा उठाना विवेक शक्तिका खास काम है। विवेकको महत्त्व देना हमारा काम है। जो अपने विवेकका आदर नहीं करेगा, वह गुरु, शास्त्र, वेद आदिका भी आदर नहीं करेगा। वह सीख तो लेगा, पर तत्त्वकी प्राप्ति नहीं कर सकेगा।

मनुष्यजन्मका अवसर मिलना बड़ा दुर्लभ है। जो इसका दुरुपयोग करता है, उसे फिर यह मौका नहीं मिलेगा। शास्त्रमें आया है—

अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।

अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

‘ऐसा कोई अक्षर नहीं है, जो मन्त्र न हो। ऐसी कोई वनस्पति नहीं है, जो औषधि न हो। ऐसा कोई पुरुष नहीं

है, जो योग्य न हो। परंतु इनका संयोजक दुर्लभ है।’ परमात्मप्राप्तिमें देरीका कारण लगनकी कमी है। जैसे फल तैयार होता है तो उसके पास तोता स्वयं आता है, ऐसे ही आप तैयार हो जायेंगे तो सन्त-महात्मा स्वतः आयेंगे।

हमने शरीरको प्रधानता देकर ‘मैं हूँ’ माना है, चेतनको प्रधानता देकर नहीं। हमें चेतन (‘है’) को प्रधानता देनी है। ज्ञान उत्पन्न नहीं होता; क्योंकि ज्ञानका कभी अभाव नहीं होता। ‘है’ का अनुभव है, करना नहीं पड़ता।

भगवान्की जगह संसारको मान लिया—इस गलतीको मिटाना है। यह असली बात है। संसार नहीं है और परमात्मा है। जो प्रत्येक क्षणमें बदलता है, वह सच्चा कहाँ है? वृत्ति लगाने या हटानेसे तत्त्व कैसे मिलेगा? तत्त्व तो वृत्तियोंसे अतीत है। कोई भी वृत्ति कभी स्थिर नहीं रहती। सबके अभावका अनुभव होता है, पर अपने अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता।

सनकादिकोंने कहा कि मन संसारमें बस गया और संसार मनमें बस गया तो भगवान्ने कहा—‘**मद्रूप उभयं त्यजेत्**’ (श्रीमद्भा० ११।१३।२६) ‘मेरे स्वरूपमें स्थित होकर दोनोंको छोड़ दो।’ मनको अपना मानना ही दोष है। मन सबका एक है, फिर कुत्तेके मनकी चिन्ता क्यों नहीं होती? अतः ‘स्व’ में स्थित होकर चुप हो जाओ—‘**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्**॥’ (गीता ६।२५)

कैसी परिस्थिति आये, ‘स्व’ में क्या फर्क पड़ता है? गंगाजीका जल कैसा ही आये, शिलामें क्या फर्क पड़ता है? जबतक जड़का असर पड़ता है, तबतक हमारी स्थिति जड़में है। जड़को हटानेकी चेष्टा करोगे तो उसकी सत्ता दृढ़ होगी। अतः उसकी उपेक्षा करो—‘**शनैः शनैरुपरमेत्**’ (गीता ६।२५)। [समाप्त]

सन्त-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे निजस्वरूप साधक महानुभाव! मानवताकी प्राप्तिके लिये निर्मलता, स्नेह और एकता अनिवार्य है। यह तीनों मानवताके ही विशेषण हैं। निर्मलता प्राप्त करनेके लिये सेवा अनिवार्य है। सेवा उसीकी हो सकती है, जिसकी दी हुई कोई भी वस्तु अपने पास हो। जो वस्तु संसारसे मिली है, उसे संसारकी ही सेवामें लगा देना चाहिये। सेवाका फल निर्मलता है, भोग नहीं।

निर्मलता आ जानेपर स्नेहकी अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। स्नेहकी पूर्णता भेदको खा लेती है और एकतामें विलीन हो जाती है। इस दृष्टिसे निर्मलता प्राप्त होनेपर स्नेहकी एकता सिद्ध होती है। अथवा यों कहो कि निर्मलतारूपी भूमिमें ही एकतारूपी लता फैलती है और स्नेहरूपी फल लगता है, जो स्वभावसे ही सरस और मधुर है। उस मधुर फलको प्राप्त करना ही मानव-जीवनका उद्देश्य है।

यह बात प्रत्येक साधकको समझ लेनी चाहिये कि हमें मुक्त उसीसे होना है जिससे हमारी जातीय तथा स्वरूपकी एकता नहीं है। इस प्रकार हमें शरीर और संसार दोनोंसे मुक्त होना है। वह तभी सम्भव है जबकि हमारी कोई कामना न रहे, यानी हम अचाह हो जायें। जिस प्रकार वस्त्रमें जो मलिनता आ जाती है उसीको भिन्न-भिन्न प्रकारसे हटाया जाता है। उसी प्रकार हमने जो अनेक प्रकारके माने हुए सम्बन्ध स्वीकार कर लिये हैं, हमें अपने अलौकिक विवेकके प्रकाशमें उनसे मुक्त होना है।

यह स्पष्ट है कि भविष्यकी आशा उसके लिये की जाती है, जिसके लिये कोई कर्म अपेक्षित हो और कर्म उसीके लिये अपेक्षित होता है, जो उत्पत्ति-विनाशयुक्त हो और जिससे देश-कालकी दूरी हो; परंतु मुक्तिके लिये कोई कर्म अपेक्षित नहीं है; क्योंकि मुक्ति किसी ऐसे

तत्त्वकी ओर नहीं ले जाती, जो सर्वत्र-सर्वदा न हो और जिससे जातीय तथा स्वरूप एकता न हो। मुक्तिका अभिलाषी जब चाहे तब मुक्त हो सकता है। मुक्त होनेमें कोई भी भाई-बहन पराधीन नहीं है, पर कठिनाई तो यह है कि मुक्त होना ही नहीं चाहते।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि मुक्त होनेमें बाधा क्या है? तो कहना होगा कि हम सुख-भोगकी आसक्तिको भी सुरक्षित रखना चाहते हैं और मुक्ति भी चाहते हैं, पर ये दोनों साथ-साथ सम्भव नहीं हैं। सुख-भोगकी आसक्तिको तो मिटाना ही पड़ेगा। उसके लिये हमें सभी कामनाओंकी निवृत्ति करनी होगी और कामनाओंकी निवृत्ति एकमात्र विवेकका आदर करनेपर होती है।

विवेकका आदर करनेकी सामर्थ्य तब आती है, जब हम प्राप्त सुखको दुःखियोंकी सेवामें लगा देते हैं। अपनेसे दुःखीको देखकर ही हमें सुखकी अनुभूति होती है। इस प्रकार सुख दुःखियोंकी देन है। यदि हम प्राप्त सुखको उदारतापूर्वक बिना किसी प्रत्युपकारकी आशाके दुःखियोंकी सेवामें लगा दें, यानी उनकी सेवा कर दें, तो बहुत ही सुगमतापूर्वक सुख-भोगकी आसक्ति मिट सकती है और मुक्त हो सकते हैं।

यह सभीका अनुभव है कि अपनेको देह मानकर कभी भी किसीका मन संसारसे अलग नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि शरीर और संसारमें जातीय एकता और गुणोंकी भिन्नता है। यदि विवेकपूर्वक अपनेको देह न स्वीकार किया जाय, तो मन स्वभावसे ही चिन्तनरहित होकर उस चेतनमें विलीन हो जाता है, जिससे हमारी जातीय तथा स्वरूपकी एकता है।

आप सभी साधक महानुभाव विवेकवान् होकर अमरत्वको प्राप्त करें, इसी सद्भावनाके साथ! 'ॐ आनन्द।'

विचारणीय बातें

- ❖ मैं कौन हूँ? कहाँसे आया हूँ? अन्तमें कहाँ जाना है? मैं क्या कर रहा हूँ?
- ❖ मैं जो कर रहा हूँ उसका परिणाम क्या होगा?
- ❖ अन्तमें जो वस्तु मेरे साथ जायगी, उस दैवी सम्पदा (सत्कर्म)-का संचय कर रहा हूँ या नहीं?
- ❖ मैंने अपने जीवनमें अभीतक कितना पुण्य और कितना पाप कमाया है?
- ❖ वास्तवमें मनुष्य-जीवनका जो कर्तव्य होना चाहिये, वह मैं कर रहा हूँ या नहीं?
- ❖ सांसारिक सुख नश्वर तथा क्षणिक है, इसको मानते एवं जानते हुए भी क्या मैं इसमें लिप्त तो नहीं हूँ?

—आचार्य पं० श्रीजालेश्वरजी महाराज

‘बटोही धीरे-धीरे चल’

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

साहित्यमें वर्णित शृंगार, वीर आदि रस प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें आते हैं, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके जीवनमें भी ये मानवोचित प्रसंग आये। इनमेंसे अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जो भावुक मनको विचलित कर देनेवाले हैं। इन हृदयस्पर्शी प्रसंगोंमेंसे एक प्रसंग है—वनपथपर जाते हुए सीताजी और लक्ष्मणके साथ श्रीरामका चित्रण। कमलकोमल श्रीराम-सीता और लक्ष्मणका कंटकाकीर्ण वनपथपर उपानहरहित होकर चलना, ग्रामीण नर-नारियोंका उन्हें देखकर आश्चर्यचकित और करुणा-विगलित हो जाना, सीताजीका थककर बैठनेके लिये कहना आदि वस्तुतः ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसंग हैं कि उनका चिन्तनकर हर भावुक हृदय करुणापूर्ण हो जाता है। गोस्वामीजीने इस भावुक स्थलका वर्णन अपनी तीनों प्रमुख रचनाओं—श्रीरामचरितमानस, कवितावली और गीतावलीमें किया है। इनमें भी गीतावलीका वर्णन अत्यन्त ललित है। गीतावलीके आधारपर करुणरसके कतिपय प्रसंग यहाँ प्रस्तुत हैं—

चौदह वर्षपर्यन्त वन-प्रवासके लिये चलते-चलते प्रभु श्रीराम अपनी जीवनसहचरी जनकनन्दिनी श्रीजानकीजी तथा लघु भ्राता लक्ष्मणके साथ प्रयागराजमें प्रवेश करते हैं। उन्होंने यहाँ भरद्वाजमुनिके आश्रममें रात्रिभर विश्राम किया। प्रातःकाल होते ही त्रिवेणी-संगमपर स्नान तथा भगवान् शिवकी पूजा-अर्चनाकर तीनों पथिक चित्रकूटकी ओर चल पड़े। घने वृक्षों और कँटीली झाड़ियोंसे आच्छादित वन-प्रदेशमें नंगे पैर चलते हुए इनकी पीड़ाका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इन गहन वनोंमें कन्धेपर धनुष, कमरमें तरकश, शीशपर जटाओंका मुकुट धारण किये अपनी मनमोहक मुसकानसे प्रकृतिके चित्तको चुराते हुए श्रीराम अपने भाई और पत्नीसहित चलते चले जा रहे हैं। मध्यमें एक अनुपम सौन्दर्यकी स्वामिनी नारीको देख ग्रामीण महिलाएँ उनपर मुग्ध हो रही हैं।

मार्गमें एक अति सुन्दर ग्राम बसा हुआ है। इस ग्रामकी सीमाके बाहर बनी पगडंडीपर जा रहे तीनों पथिकोंका समाचार जैसे ही ग्रामीण महिलाओंको मिला, वे तीव्र गतिसे मनमें उनके दर्शनोंकी अभिलाषा लिये दौड़ी चली आयीं। श्रीरामने जब उन महिलाओंको अपनी

ओर आते देखा तो वे कुछ पलके लिए वहीं रुक गये। ये महिलाएँ जैसे ही प्रभुके समीप पहुँचीं, वैसे ही एक महिला अपने संग आयी अन्य महिलाओंको सम्बोधितकर कहने लगी—

तू देखि देखि री! पथिक परम सुंदर दोऊ।
मरकत-कलधौत-बरन काम-कोटि-कांतिहरन,
चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ॥
कर सर-धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
संग चंद्रबदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ।
तापस बर बेष किए, सोभा सब लूटि लिए,
चितके चोर, बय किसोर, लोचन भरि जोऊ॥
दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
परसपर कहैं, सखि! अनुराग ताग पोऊ।
तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सधन,
कृपिन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ॥

(गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद १६)

री सखियो! देखो, ये श्याम और गौर वर्णके दोनों पथिक कितने सुन्दर हैं, इनकी शोभाको देख ऐसा जान पड़ता है, जैसे ये कोई राजवंशीय हैं। वीरोंकी भाँति इनके हाथोंमें धनुषबाण और कमरमें तरकस भी शोभायमान हैं। तापस वेष धारण किये इन राजकुमारोंके संग सुन्दरी नारीका दिव्य सौन्दर्य बरबस ही मनको आकर्षित कर रहा है।

अपनी सखीके मुखसे ऐसे प्रिय वचन सुनकर एक महिलाने अपने मनके भावोंको सन्त तुलसीके शब्दोंमें इस प्रकार व्यक्त किया—

सखि सरद-बिमल बिधुबदनि बधूटी।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी,
रत्यो रची बिधि जो छोलत छबि छूटी॥
साँवरे गोरे पथिक बीच सोहति अधिक,
तिहुँ त्रिभुवन-सोभा मनहु लूटी।
तुलसी निरखि सिय प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी॥

(गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद २१)

सखि! निर्मल चन्द्रमाके समान सौन्दर्यसे ओत-प्रोत ऐसी नारी न तो भूतकालमें हुई है न वर्तमानमें है और

राजभवनके यतिराज

(आचार्य श्रीसोहनलालजी रामरंग)

‘कौन ? कीर्ति !’

‘जी, ज्येष्ठ मातुश्री! मैं ही हूँ।’

‘तो इतनी रात्रि गये तू प्रासादकी छतपर अकेली क्यों

टहल रही है ?'

‘यूँ ही मातुश्री! तुझे कोई पीड़ा-वेदना है क्या?’

‘नहीं, मातुश्री ।’

‘क्या शत्रुसे कुछ विवाद हो गया है?’

‘नहीं, मातुश्री।’

‘तो फिर दो प्रहर रात्रि बीते तू अपने शयनागारसे

बाहर क्यों टहल रही है ?'

‘यूँ ही मातृश्री।’

‘यूँ ही मातृश्री, यह तो मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं है।

कीर्ति पुत्रि! तू स्पष्ट क्यों नहीं बोलती?’

‘कुछ भी तो नहीं मातृश्रीका क्या अर्थ है? अरी

पगली! मैं तेरी धर्ममाता हूँ। मुझे इस प्रकार टहलनेका कोई कारण तो बता?’

राजमाता कौसल्या जो किसी कारणवश रात्रिको उठ गयी थीं, उन्हें शत्रुघ्न-पत्नी श्रुतिकीर्तिको छतपर दो प्रहर रात्रि गये, अकेली टहलते हुए देखकर चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। श्रुतिकीर्तिद्वारा अपने किसी भी प्रश्नका युक्ति-युक्त उत्तर न पाकर उनकी चिन्ता शंका में परिवर्तित होने लगी। उन्होंने अत्यन्त व्यग्रतासे फिर पूछा—‘शत्रु कहाँ है?’

राजमाता अपने प्रश्नके उत्तरमें श्रुतिकीर्तिको मौन रहते देखकर हिलती-काँपती तुरन्त दौड़ चलीं। वे सीधी शत्रुचललालके शयनकक्षमें जा पहुँचीं। देखा कि शय्यापर श्वेत फेन-सी चादर तो बिछी हुई है, किंतु वह सूनी है। माँको प्रवेश करते देखकर श्रुतिकीर्ति भी अपने कक्षमें आ गयी। माँ आँखों ही आँखोंमें प्रश्न करने जा रही थीं कि उनकी दृष्टि धरतीपर बिछी हुई चटाईपर गयी। जिसपर कोई तकिया भी नहीं था। वे समझ गयीं कि श्रुति यहीं थोड़ा-बहुत विश्राम अपनी ही बाँहका तकिया लगाकर

करती है, किंतु उन्होंने उत्सुकतावश पुनः पूछा—पुत्रि ! मुझे बता तो सही शत्रु कहाँ है ?

अब उत्तर देनेको बाध्य हुई श्रुतिकीर्तिके कण्ठसे अटक-अटककर एक-एक शब्द इस प्रकार निकलता हुआ लग रहा था, जैसे कोई अत्यन्त दुर्बल व्यक्ति थका-थका-सा किसी गहरे कूपसे कोई बड़ा-सा जलका भरा हुआ पात्र खींचनेका प्रयत्न कर रहा हो—

‘माँ! जिस दिनसे हम चित्रकूटसे लौटे हैं, आर्यपुत्रने उस दिनसे एक क्षणके लिये भी, कभी एक बार भी इस कक्षमें प्रवेश नहीं किया।’

‘प्रवेश नहीं किया तो वर्षों-वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी तुने हमसे यह तथ्य प्रकट क्यों नहीं किया?’

‘क्या तथ्य है, जो प्रकट करती?’

‘तूने कभी पूछा नहीं कि रात्रिभर आप कहाँ रहते हैं?’

‘माँ! मैं पूछती कब और पूछती भी क्यों?’

‘क्यों, क्या कभी वह तुमसे नहीं मिला?’

‘नित्य ही दर्शन करती हूँ। राजसभामें जाते समय, आते समय और पाकशालामें भी। आपकी चरणसेवा करते समय भी।’

‘तो संकेतसे ही पछती?’

‘उनके नमित विलोचन समस्त प्रश्नोंका स्वतः उत्तर दे देते हैं और फिर मेरे पास करनेको प्रश्न भी कहाँ है?’

‘तो बता वह इस समय कहाँ है?’

अबतक कई परिचारिकाएँ जो वहाँ आ चुकी थीं, उनमेंसे एक श्रुतिकीर्तिको मौन देखकर, उनका संकेत देखकर धीरेसे बोली—

‘ज्येष्ठ मातुश्री ! युवराज इस समय सम्भवतः मुख्यद्वारके समीप ही कहीं होंगे। यदि आपकी आज्ञा हो तो हम आपके आदेशसे उन्हें अवगत करायें?’

‘नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं वहाँ जाऊँगी।’ कहती हुई राजमाता कौसल्या तीव्र गतिसे बढ़

कलहग्निको यज्ञाग्नि बनानेका जो आदर्श आपने स्थापित किया है, यह उसीका प्रतिफलमात्र है। यदि अन्तःपुरकी प्रजाओंको आपने न सम्हाला होता तो इस पुरकी प्रजाओंको कौनसे दुर्दिन न देखने पड़ते, उनकी कल्पना करते ही हृदय प्रकम्पित हो जाता है। चित्त विक्षिप्त और बुद्धि भ्रमित हो जाती है। अन्तमें मेरी महिमामयी माँ! मेरी आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हुए यही याचना है कि आप अपने स्वरूपका स्मरण करें। आप स्नेहके कारण तृणके समान तनका परित्याग करनेवाले महापुरुषकी सहधर्मिणी हैं और धर्मके कारण राजसिंहासनको निर्जन वनपर न्यौछावर करनेवाले युगपुरुषोंकी जननी हैं। आप सद्धर्मको भौतिक सुखोंकी वेदीपर बलिपशु बनानेकी प्रेरणा मत दो।'

कराकर, उसके संचित होते हुए पुण्योंको प्रायश्चित्त-विहीन पापोंके गहन गर्तमें समाधिस्थ होनेको विवश मत करिये।'

‘शत्रुघ्न! तू अयोध्याकी लाजका रक्षक है। शत्रुघ्न! तू रघुकुलके गौरवका संरक्षक है। शत्रुघ्न! तू राजोचित कर्तव्यका पालक है, इन अनाथ होती हुई प्रजाओंका सब प्रकारसे समर्थ नाथ सिद्ध हुआ है।’ ‘माँ! यह इस अकिंचनकी गरिमा नहीं, अपितु आपके श्रीचरणोंके आशीर्वादकी महिमा है।’

‘शत्रुघ्न! मैंने इन आँखोंसे इस अयोध्याको राक्षसोंसे पददलित और शनिके प्रकोपसे प्रजाओंको भूख-प्याससे विकल होते हुए देखा है। किंतु अब आजकी इस अयोध्याको भी देख रही हूँ, जिसके मूर्धाभिषिक्त सम्राट् जलपर खिँची हुई रेखासे चले गये और उसीका एक युवराज राजा बननेसे पूर्व और दूसरा होनेवाला महाराज राजचिह्नोंके स्पर्शसे पूर्व स्मृतियोंपर अंकित होनेवाली वज्रेखाओंको रज-रेखा-सी उड़ाकर चला गया। उन जल-रेखा और रज-रेखाओंपर मेष लगानेकी कीर्ति तुझे ही प्राप्त हुई है।’

‘माँ! धर्म और स्नेहमेंसे सद्धर्मका वरणकर भयंकर

कहते-कहते शत्रुघ्न माँ कौसल्याके चरणोंमें लोट गये। माँने अत्यन्त कठिनतासे शत्रुघ्नको उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। उनके मुँहसे चलते-चलते धीरेसे केवल यही शब्द निकले कि ‘भावी रामराज्यके सुदृढ़ दुर्गकी नींवकी शिलाका नाम शत्रुघ्न है किंतु उसके गगनचुम्बी शिखरको देखकर इस नींवकी शिलाका मूल्यांकन कौन-सा युग, न जाने कब करेगा?’

प्रेरक-प्रसंग—

देह रहते हुए विदेही क्यों ?

(श्रीशरद् चन्द्रजी पेंढारकर, एम०ए०)

महाराजा जनकके एक मन्त्रीने उनसे एक दिन पूछा, “महाराज! आप देहधारी होकर भी ‘विदेही’ क्यों कहे जाते हैं?” जनकने उत्तर दिया कि वे इसका जवाब कुछ दिनोंके पश्चात् देंगे।

एक दिन राजाने एक दूतको प्रातः बुलाकर उससे कहा, “जाओ, शहरमें ढिंढोरा पीट आओ कि मन्त्रीके हाथों अपराध होनेके कारण उसे ४ बजे शामको सूली दी जायगी।” साथ ही मन्त्रीको उसी दिन सुबह १० बजे भोजनका निमन्त्रण दिया।

मन्त्री नियत समय भोजनके लिये पहुँचा। राजाने नाना प्रकारके पदार्थ बनवाये थे, किंतु उसमें जान-बूझकर नमक बिलकुल भी न डाला था। मन्त्रीका ध्यान सूलीकी तरफ था। उससे वे सारे पदार्थ खाये नहीं जा रहे थे, किंतु बेचारा मजबूर था। भोजनके पश्चात् महाराजा जनकने उससे प्रश्न किया, “किसी चीजमें नमककी कमी तो न थी?” मन्त्रीने डरते हुए जवाब दिया, “महाराज, मौतके भयके कारण मुझे भोजनका कुछ भी स्वाद मालूम न हुआ। मैं यह न समझ सका कि कौन-सी चीज मीठी थी, कौन-सी खट्टी और कौन-सी फीकी।”

तब राजा जनकने कहा, “मन्त्रीजी, भोजन करते समय आपको मालूम हो गया था कि कुछ ही घण्टोंमें आपको सूली दी जानेवाली है, अतः आप देहके होते हुए भी ‘विदेही’ हो गये थे। फिर मैं तो अपनी देहके अस्तित्वपर क्षणभरके लिये भी विश्वास नहीं करता। इसलिये यदि लोग मुझे ‘विदेही’ कहें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या।”

सुख-सन्तोषका जीवन कैसे जीयें

(डॉ० श्रीकपिलदेवसिंहजी, पी-एच०डी०)

[गतांक पृ०सं० ६२० से आगे]

आजके दूषित वातावरणमें उत्तम आचरण और विचारोंकी रक्षा कैसे हो, जबकि एक पक्ष उन्मत्त होकर दूसरे पक्षको हर तरहसे दुःख देने और उसका अहित करनेपर उतारू है? इसका जो उत्तर सत्पुरुषोंने दिया है, वह इस प्रकार है। इसमें दो राय नहीं कि संसारमें समूची नातेदारी, रिश्तेदारी, प्रेम, मेल-जोल सब स्वार्थका सौदा है। जिसका जबतक जिससे स्वार्थ सधता है; तबतक वह उसका है, उसके बाद पराया हो जाता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि हम अकेले आये हैं और अकेले ही हमको जाना है तथा अपनी करनीका फल भी अकेले ही भोगना है। सभी सुखके साथी हैं। अतः प्रत्येक व्यक्तिको केवल अपने ही स्वार्थमें तल्लीन न रहकर दूसरोंके हितका सदैव ध्यान रखना चाहिये, अन्यथा एक-दूसरेके स्वार्थ परस्पर टकराते रहेंगे और आपसमें संघर्ष, मनमुटाव, हिंसा-प्रतिहिंसा आदिकी प्रवृत्तियाँ बढ़ती रहेंगी। हमारा कर्तव्य बनता है कि जहाँतक हो, हम अपना स्वार्थ समेटें और सबसे हिल-मिलकर चलें। कहा है—

चार वेद षट् शास्त्र में बात मिली है दोय।

दुख दीन्हें दुख होत है सुख दीन्हें सुख होय॥

दूसरी बात जो सत्पुरुषोंने कही है, वह यह कि वास्तवमें किसीका अहित दूसरेके द्वारा हो ही नहीं सकता, दूसरा निमित्त भले ही बन जाय। 'मानस' में आया है—
'काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥'

यही बात दूसरी जगह भी कही गयी है—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता

परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।

अहं करोमीति वृथाभिमानः

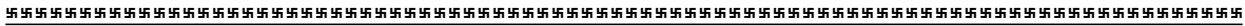
स्वकर्मसूत्रे ग्रथितो हि लोकः॥

अर्थात् सुख-दुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दूसरा दुःख देता है, यह समझना कुबुद्धि है। मैं करता हूँ, यह वृथा अभिमान है। सब लोग अपने-अपने कर्मोंकी डोरीसे बँधे हुए हैं। इसलिये सुख-दुःख अपने ही पूर्वकृत कर्मोंका फल समझना चाहिये।

सत्पुरुष जो तीसरी बात बताते हैं, वह यह है कि इस जीवनके एकमात्र आधार भगवान् ही हैं। विश्वरूपसे वे ही सब प्राणी-पदार्थोंमें विराजमान हैं—'वासुदेवः सर्वमिति' (गीता ७।१९)। अर्थात् वासुदेवके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं। जब सब वे ही हैं, सब उन्हींका रूप है, तब 'अनेकरूपरूपाय'—ऐसा समझकर हमें सबसे निर्वैर रहनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। यदि हम दूसरोंसे प्रेम करेंगे तो अवश्य प्रेमका प्रतिदान होगा। अपनेमें बदलाव लाये बगैर दूसरोंमें बदलावकी आशा करना अनुचित है। यदि किसीके साथ किसी बातको लेकर कुछ अनबन हो जाय और बर्तावमें दोष आ जाय तो श्रेष्ठ पुरुषोंका मानना यह है कि बुद्धितत्त्वका सहारा लेकर व्यर्थका तर्क-वितर्क और वाद-विवाद करते रहनेसे कोई लाभ नहीं होता, बल्कि उसके साथ मैत्रीपूर्ण ढंगसे व्यवहार करनेपर ही सफलताके संयोग अधिक प्राप्त होते हैं। हजारों वर्षसे सत्-पुरुष यही कहते आ रहे हैं कि बुराईको अच्छाईसे ही जीता जा सकता है। इन्हीं विचारोंको लेकर चलनेसे हम अपने उत्तम आचरण और नैतिकताकी रक्षा कर सकते हैं।

मनुष्यको सुख-सन्तोष और सफल जीवनके लिये विनम्र बनना अति आवश्यक है। विनम्रता सब गुणोंकी जननी मानी गयी है। यह गुण जिस व्यक्तिमें नहीं होता, उसमें कोई गुण टिक ही नहीं सकता। विनम्रतासे लाभ-ही-लाभ होता है। 'लघुतासे प्रभुता मिले, प्रभुतासे प्रभु दूर।'

कठोरता और हठपूर्ण अभिमानको जीवनसे हटा देनेपर ही जीवनका रस दिखायी देता है। जीवन हलका और प्रसन्न रहता है। वरना जरा-सी अकड़, जीभके डंकरूपी दो तीखे-कटुवे शब्द सुहावने वातावरणको दूषित और विषाक्त कर देते हैं। इसीसे आज कितने घर-कुटुम्ब नित्य टूट रहे हैं। विनम्रताको किसी व्यक्तिकी कमजोरी समझनेवाला व्यक्ति अहंकारी होता है। वह सदा दुःखी रहता है और अशान्तिमें जीता है। हठी, अहंकारी और पूर्वाग्रही व्यक्ति न उचित-अनुचितका सही निर्णय ले पाता है और न सामाजिक मर्यादाका पालन ही कर पाता है।



ऐसे लोगोंकी अपनी इच्छाएँ ही सब कुछ होती हैं। वे न तो स्वभावके ही नरम होते हैं और न उनके विचार ही सहानुभूतिपूर्ण। वे विवेकसे काम नहीं लेते। हठपूर्वक अपनी इच्छाओंकी ही पूर्ति चाहते हैं, चाहे वे कितनी ही असंगत और अकल्याणकारी क्यों न हों। इस प्रकार वे स्वयं दुःखी रहते हैं और दूसरोंको भी दुःख देते हैं, चाहे वह उनका कितना ही अपना सगा क्यों न हो।

मनुष्यको अपने जीवनमें थोड़ा परोपकारकी प्रवृत्ति यथाशक्ति बनाये रखनी चाहिये। इसके बहुतसे रूप हैं। हमारे दो मीठे सहानुभूतिपूर्ण शब्द भी जो हम किसी दुःखमें पड़े व्यक्तिसे बोलते हैं, वह भी परोपकार ही है। आज तो कितने वृद्धलोग अपनोंकी बेरुखीसे ही दुःखी रहते हैं। ईश्वरसे हम सुख-शान्तिके लिये प्रार्थना करते हैं, पर पाते इसलिये नहीं कि इस गुणको—परोपकारकी भावनाको, स्वयं कार्यरूपमें हमने उतारा ही नहीं है। ईश्वर फल तो केवल हमारे कर्मोंका ही देता है। जब हमने दूसरोंको सुख-शान्ति दी ही नहीं है, तो मिलेगी कहाँसे। जो हम बोयेंगे, वही तो काटेंगे।

संसारमें मनुष्यका जीवन अन्तहीन जटिल समस्याओंसे घिरा हुआ रहता है। उन परेशानियोंके बीच वह स्वयंको चिड़चिड़ा, कुण्ठित एवं तनावग्रस्त महसूस करता है। ऐसे समयमें हमें अपने मनको वशमें रखकर सँभलकर चलनेकी आवश्यकता होती है। ऐसे समयमें हमें उदारता, आपसी सहानुभूतिका आश्रय लेना चाहिये। कभी-कभी हम छोटी-सी समस्याको बहुत बड़ा-चढ़ाकर देखते हैं और परेशान हो जाते हैं। यदि हम ठहरें और समय गुजरने दें तो धीरे-धीरे छोटी-बड़ी सभी समस्याएँ समयके साथ स्वयं समाप्त हो जाती हैं। हमें उतावला नहीं होना चाहिये। दूसरे, हमें यह आशा नहीं करनी चाहिये कि सब हमारी ही बात मानें। यदि हम ऐसा सोचेंगे तो दुःख और अपमानबोधके सिवाय कुछ हाथ नहीं लगेगा। अपनेको हम जितना कम-से-कम समस्याओंमें उलझायेंगे और उनपर जितना ही कम-से-कम सोचेंगे-बोलेंगे, उतनी ही शान्ति पा सकेंगे। इसलिये जगत्के प्रपंचोंको मनमें कम-से-कम आने दें और यदि आते हैं तो उन्हें बराबर बाहर निकाल फेंकते रहें तथा उनके स्थानपर भगवान्की उपस्थितिका अनुभव करें। उनसे प्रार्थना करें कि वे हमारी कमजोरियोंको दूरकर हमें कठिनाइयोंसे बचायें; क्योंकि वे ही जीवके सच्चे-निःस्वार्थ हितैषी हैं।

भगवान्का अपनेमें चित्त लगानेवालेके लिये आश्वासन है—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादान्तरिष्यसि।

अथ चेत्त्वमहङ्कारान् श्रोष्यसि विनश्यसि॥

(गीता १८।५८)

अर्थात् तू मेरेमें निरन्तर मनवाला हो, मेरी कृपासे सब संकटोंको अनायास ही तर जायगा और यदि अहंकारके कारण मेरे वचनोंको नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायगा। इसीलिये सन्त और महापुरुष बराबर कहते आ रहे हैं कि मनमें चाहे कितनी प्रकारकी चिन्ताएँ, विषाद और व्याकुलता हो और इन सबके होनेमें चाहे कितने ही कैसे भी कारण क्यों न हों, इन सबका नाश भगवान्का आश्रय ग्रहण करनेसे हो जायगा। यह निश्चित है।

भगवान्का आश्रय और उनमें आत्मीयताका भाव कि वही एकमात्र हमारे हैं—यह सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी भाव तो है ही इसके अतिरिक्त दो और विचार सुख-शान्ति देनेवाले कहे जाते हैं। उनमें एक है अपनी 'मौत' को बराबर याद रखना। सबको इस संसारको छोड़कर एक दिन जाना है—

जाना है, रहना नहीं, जाना विस्वा बीस।

थोड़े दिन की जिन्दगी, भज ले श्रीजगदीस॥

सहस्रबाहु और रावण—जैसे महाबली भी कालसे नहीं बच पाये। हमारे पूर्वज, इष्ट-मित्र और सगे-सम्बन्धी आँखोंके सामने देखते-देखते चले गये और चले जा रहे हैं। हमें भी एक दिन सब कुछ यहीं छोड़कर हाथ-पसारें जाना है। अन्तमें, सबको यही दशा प्राप्त होती है। संसारकी कोई वस्तु साथ नहीं जाती—'**सिकन्दर जब चला दुनियासे दोनों हाथ खाली थे।**' मरनेके बाद जीवको वहाँ पहुँचकर अपने कर्मोंका हिसाब देना होता है। अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप ही मनुष्य अगले जन्ममें भोग भोगता है। यदि हम इस विचारको बराबर अपने मनमें रखेंगे तो हमारे जीवनका, कार्य करनेका दृष्टिकोण ही बदल जायगा। असत् एवं पापकर्म करनेमें ग्लानि होने लगेगी और जीवन सुख-सन्तोषमय बन जायगा।

दूसरा है 'होनी'; जिसे प्रारब्ध, भाग्य, किस्मत, पूर्वकर्म आदि भी कहते हैं। उसपर विश्वास रखना। सभीका यह मानना है कि 'होनी' तो होकर ही रहती है, चाहे कोई कितना प्रयत्न कर ले। संसारके सुख-दुःख,

प्रसन्न रहना और हँसना एक व्यायाम है, इससे शरीर पुष्ट होता है। हँसनेसे धमनियोंमें रक्त-संचार तेजीसे होता

खिलखिलाकर हँसनेकी आदतसे शरीर निरोग रहता है। हँसनेसे फेफड़े मजबूत होते हैं। हँसनेसे मनके विकार दूर हो जाते हैं। श्रीकेरीबोरने तो हँसी और उल्लासको यौवनकी संज्ञा दी है। उनका कथन है—‘हास्य यौवनका शृंगार है, जो व्यक्ति यौवनका शृंगार नहीं कर सकता, उसके पास यौवन कैसे टिक सकता है?’ हँसनेका—प्रफुल्ल रहनेका स्वभाव बनाइये, यौवन सदा आपका साथ देगा।

अतः हमें भी चाहिये कि हम अर्जुनकी तरह जिन्दगीकी डोर प्रभुके हाथोंमें सौंपकर कष्टोंसे छुटकारा प्राप्तकर सदा प्रसन्न रहनेका स्वभाव बना लें। जब मैं ऐसा सोच रहा था, तभी महाराज-घाटकी सीढ़ियोंपर बैठा एक फक्कड़ गा उठा—‘तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार उदासी मन काहे को करै?’

मूढ़ मन तजत न विषय-विकार ।
 याते संसृति दुख बहु झेलत
 आधि-व्याधि की मार ।
 मन मन्दिर श्रीहरि निवास हित
 घुस्यो चोर बटमार ।
 इनहिं भगाए बिन हरि कैसे
 आवैं मन के द्वार ।
 नाम शलाका जारि नसावै
 विषय भूत को ज्वार ।
 बिनु हरि कृपा न सुलभ 'मुरारी'
 भुक्ति मुक्ति सुख सार ।
 मूढ़ मन तजत न विषय-विकार ।

धृति, क्षमा, दया, सन्तोष, सत्य, अक्रोध, अस्तेय (चोरी न करना), प्रसन्नता, परोपकारिता, उदारता, मधुर भाषण करना, स्वाध्याय करना आदि गुण अपने भीतर धारण करना चाहिये। कामना, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और अहंकार—ये विषैले बीज हैं। इन्हें अपने

जो भी चाहो कर सकोगे दह बनो, स्वाती बनो ॥

(श्रीमूलखराजजी विरमानी)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उद्योगपति अपने धनकी वृद्धिके लिये काम करते हैं। अतः उद्योगपतियोंको कोई भी उद्योग लगानेसे पहले यह भरोसा होना चाहिये कि यह उद्योग लाभकारी होगा। यदि ये गायके आर्थिक पहलूको ठीकसे समझ लें तो इसमें सन्देह नहीं है कि गोसम्बन्धी बड़े उद्योग लगानेमें उन्हें आर्थिक हानिकी कोई भी सम्भावना नहीं है। उद्योगपति डेयरी-उद्योगको निजी क्षेत्रमें लायें तो उनको केवल गायके दूधसे ही नहीं, देशी गायके गोमत्र और गोबरसे भी लाभकी प्राप्ति होगी।

कृशल उद्योगपति ही दूध और उससे बननेवाले

एक विचार उद्योगपतियोंको अवश्य देना चाहिये कि इस देशने आज वैज्ञानिक उपलब्धियोंमें उन्नतिकर अपनी धाक सारे विश्वमें जमायी है और विदेशी मुद्रा कमायी है, ऐसे ही देशी गायोंकी डेरियाँ, गोमूत्रसे लाभकारी औषधियाँ और पंचगव्यसे अनेकानेक वस्तुओंका निर्माणकर उससे भी अधिक समृद्धि और सुख-शान्ति पायी जा सकती है और इस कार्यकी सम्पन्नतामें ही समाज और देशकी महान् उन्नतिका रहस्य भी छिपा है।

व्यक्तिकी आयु ५० वर्षसे अधिक होनेके बाद अगर

निम्न बातोंका ध्यान रखा जाय तो हृदयरोग न होनेकी सम्भावनाएँ बनी रहती हैं—

१. प्रातः सूर्यकी किरणें निकलनेके पूर्व तीन या चार मील तेज रफ्तारसे चलना।

२. नशीली वस्तुओं जैसे शराब, भाँग, गाँजा, गुटका, जर्दा आदिका सेवन न करना। ठण्डे पेय पदार्थ, जिनमें नशीले तरल पदार्थोंका मिश्रण है आदिका सेवन न करना।

३. घी, तेल और चिकनाईयुक्त कोई भी तरल पदार्थ, तली या छौंकी वस्तुओंका सेवन न करना। नमकीन वस्तुएँ जैसे पापड़, चिप्स, चूरन आदिका ज्यादा सेवन न करना।

४. जिन फलोंमें सुगर ज्यादा मात्रामें हो, जैसे—केला, खजूर, सीताफल, गन्ना, अंगूर, आम आदिका सेवन न करना। जो सब्जियाँ जमीनके नीचे होती हैं, जैसे—आलू, ओल, अरबी, मूँगफली तथा कच्चे केले आदिका सेवन न करना। मैदा या इससे निर्मित पदार्थोंका सेवन न करना।

५. शरीरका वजन कम रखना, रक्तचापपर नियंत्रण रखना एवं खानेकी अन्य चीजोंका सेवन उचित अनुपातसे कम करना। वर्षमें दो बार ई. सी. जी. एवं खूनका परीक्षण (लिपिड प्रोफाइल) करवाकर अनुभवी डाक्टरसे परामर्श कर लेना उचित है।

६. नियमित समयपर कम खाना, खानेके समयमें ज्यादा अन्तर न होना, रात्रिको जल्दी सोना, प्रातः जल्दी उठना, काम करनेमें जल्दबाजी न करना, कठोर परिश्रमका कार्य न करना, चिन्ता एवं मानसिक तनाव उत्पन्न करनेवाले विषयोंसे दूर रहना, अपने स्वार्थ (हित) में पागल न होना बल्कि जहाँतक बन सके, जिसमें अपना तथा दूसरेका हित होता हो, उस कार्यको करना।

७. आस्तिक व्यक्तियोंको अपनी इन्द्रियोंको भोगमें न लगाकर योगमें लगानेसे अत्यधिक हित होगा। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार आदिको शुभ कर्ममें लगाकर भगवत्कृपाकी अनुभूति मानना हितकारी है।

हृदयरोगके जाननेकी प्रक्रिया

प्रारम्भिक अवस्थामें चिकित्सक रोगीके हृदयकी जाँच ई. सी. जी. (E. C. G.)-के द्वारा करवाते हैं। ई. सी. जी. (E. C. G.)-में दोष आनेपर रोगीका इकोकार्डिओग्राम (Echocardiogram) करवाया जाता है

किंतु चिकित्सक हृदयरोगकी मात्राका अनुमान अपने अनुभवके आधारपर करके दवाईयाँ, खानेमें परहेज, आराम करनेकी सलाह आदि देता है। इकोकार्डिओग्राम-परीक्षण हृदयकी वर्तमान स्थितिको रोगके अनुरूप ज्यादा स्पष्ट करता है अर्थात् इस परीक्षणसे हृदयकी भीतरी बनावट एवं उसकी क्रियाका पता चलता है। इकोकार्डिओग्राम-परीक्षणमें दोष आनेपर एक और परीक्षण कराया जाता है, जिसे टी. एम. टी. (T. M. T.)-के नामसे जाना जाता है। इस परीक्षणद्वारा मशीनपर चलने एवं दौड़नेकी स्थितिमें हृदयकी स्थिति क्या रहती है, यह स्पष्ट होता है। साथ ही साथ रोगीके खूनमें विभिन्न चीजोंकी वर्तमान स्थिति क्या है? यह जाँच भी करायी जाती है। टी. एम. टी. (T. M. T.)-की रिपोर्टमें पाजिटीव आनेपर करीब-करीब यह निश्चय हो जाता है कि हृदयकी नलीमें अवरोध (ब्लोकेड) है। यह अवरोध (ब्लोकेड) कितना है एवं हृदयके किस भागमें है, इसके लिये कॉरोनरी एनज्योग्राफी (Coronary Angiography)-का परीक्षण करवाया जाता है। इस परीक्षणमें मशीनके माध्यमसे हृदयकी नलीका चित्र लिया जाता है। एनज्योग्राफी (Angiography)-परीक्षणकी रिपोर्टके आधारपर कोई एक उपचार रोगीकी स्वीकृति मिलनेपर प्रारम्भ किया जाता है।

हृदयरोग-उपचारके तरीके

१. खूनकी नलीमें अवरोध (ब्लोकेड) का कम मात्रामें होना तथा ऐसे भागमें होना जिसकी वजहसे हार्ट अटैकका खतरा काफी कम रहता है या रोगीकी आर्थिक स्थिति ऐसी है जिससे वह एनज्योप्लास्ट या बाईपास सर्जरी करवानेमें असमर्थ है। उस स्थितिमें उपचारमें दवाइयोंका सहारा लिया जाता है। सवेरे घूमना, खाने-पीनेमें पूर्ण सावधानी रखना और कुछ समय पूर्ण आराम करना बतलाया जाता है। कभी-कभी इस उपचारसे हृदयके अवरोध (ब्लोकेड) में कमी भी हो सकती है या अवरोध (ब्लोकेड) का बढ़ना रुक सकता है।

२. एनज्योप्लास्ट (Angioplast)—यह एक ऐसा उपचार है, जिसमें हृदयकी जिस नसमें खूनके आवागमनमें अवरोध हो गया है, उस नसमें बेलून पास करके उस अवरोधको दूर कर दिया जाता है और उस नसमें एक स्टैन्ड लगा दिया जाता है, जो उस नसको सहारा प्रदान

हृदयरोगकी चिकित्सा करवानेवाले रोगी और उनके निकटके पारिवारिक सदस्य प्रायः मानसिक दृष्टिसे काफी भयभीत हो जाते हैं, जो कि रोगके उपचारमें हितकारी नहीं है। रोगीके मनमें शरीरके न रहनेका भय घूमता रहता है। शरीरमें बाईपास सर्जरीमें होनेवाली वेदनाकी कल्पना भयको और बढ़ा देती है। सारे भय वास्तविकताकी जानकारी न होनेके कारण हैं; क्योंकि यह जो मनुष्य-शरीर हमें मिला है, वह ईश्वरकी कृपाका परिणाम है और तबतक रहेगा जब-तक परमात्मा चाहेंगे। अन्य कोई व्यक्ति न इस समयको घटा सकता है और न एक पल भी बढ़ा ही सकता है। इसलिये रोगीको ईश्वरपर पूर्ण भरोसा रखना चाहिये। परमात्मा वही करेंगे जो मनुष्यके हितमें होगा। इस सत्यके प्रकाशमें हमारे अज्ञानरूपी अन्धकारकी सत्ता ही समाप्त हो जायगी और भयरूपी अज्ञान, ज्ञानरूपी

प्रकाशकी सत्ताके सामने एक क्षण भी टिक नहीं सकेगा। इसके अतिरिक्त भय हमेशा अन्यसे होता है अपनोंसे नहीं। जबकि रोगीके शरीरमें जो सत्ता है, वह परमात्माका अंश है अतः अपना ही है। अंशीको अपने अंशके प्रति या अंशको अपने अंशीके प्रति स्वाभाविक रूपसे चाहत रहती है और एक-दूसरेके स्वाभाविक सहायक हैं। अतः परमात्मा वही करेंगे जो उनके अंशके हितमें होगा।

वेन्टीलेटर कृत्रिम ऑक्सीजन ज्यादा मात्रामें प्रदान करनेवाला यन्त्र है। आजकल बाईपास सर्जरीके समय हृदयकी गति बिना किसी अवरोधके सुचारुरूपसे चलती रहे, इस आशयको ध्यानमें रखकर ऑपरेशनके समय ६ घंटेसे १५ घंटेतक हृदयको कृत्रिम ऑक्सीजन प्रदान करनेके लिये वेन्टीलेटरका उपयोग किया जाता है। वेन्टीलेटरके उपरान्त ऑक्सीजन-मास्कद्वारा आक्सीजन दी जाती है फिर दो पतली तारकी नलीद्वारा दी जाती है। हृदयकी स्थिति सामान्य होनेपर कृत्रिम ऑक्सीजनके साधन हटा दिये जाते हैं।

ऑपरेशनमें होनेवाली वेदनाका भय निराधार है; क्योंकि रोगीका ऑपरेशन प्रारम्भ करनेके पूर्व ही बेहोश कर दिया जाता है और फिर रोगीकी वेदनाकी स्थितिकी मात्राका अनुमान लगाकर धीरे-धीरे उसी मात्रामें होशमें लाया जाता है। इसलिये वेदनाका ज्यादा अनभव नहीं होता।

लाख दुःखोंकी एक दवा है—परमात्मापर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास रखना। यह भावना जितनी दृढ़ होगी, लाभ उतना ही अधिक होगा। फिर रोगीको ज्ञानकी दृष्टिसे सोचना चाहिये। क्या रोगको उसने बुलाया है? क्या वह रोगको भगा सकता है? क्या उसके न चाहनेपर रोग आनेसे रुक सकता था? आदि प्रश्नोंका उत्तर अपने ज्ञानके द्वारा प्राप्त हो जानेपर यह सिद्ध हो जायगा कि उसके अपने हाथमें कुछ भी नहीं है। इसलिये धैर्य और साहसके साथ हर्षपूर्वक परमात्माका प्रसाद मानकर भोग लेनेमें ही फायदा है; क्योंकि निश्चितरूपसे रोग अपने ही किसी पापकर्मका परिणाम है, अब चाहे हँसकर भोग लें या रोकर भोग लें। हँसकर भोगनेसे पापकर्म कट जायँगे। रोकर भोगनेसे कोई ऐसी नयी क्रियाका सृजन होना स्वाभाविक है, जिससे नये पापकर्म होनेका संयोग हो सकता है। रोगीको किसी भी सत्य बातका सहारा लेकर अपना उपचार पूर्ण निष्ठाके साथ करवाना चाहिये।

राम ते अधिक राम कर दासा

(श्री एन०एल० बंसलजी)

महान् सन्त एवं युगकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी-
द्वारा रचित निम्न दो चौपाइयाँ भगवान् एवं भक्तके परस्पर
अटुट सम्बन्धको प्रदर्शित करती हैं—

मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥

(रा०च०मा० १।११२।४)

मंगल-मूर्ति मारुति-नंदन । सकल-अमंगल-मूल-निकंदन ॥

(विनय-पत्रिका, पद ३६)

पहली चौपाई महाराजा दशरथके आँगनमें विहार करनेवाले बालरूप भगवान् रामके सन्दर्भमें है और दूसरी चौपाई मारुतिनन्दन (पवनपुत्र) श्रीहनुमान्जीके सन्दर्भमें है, जो श्रीरामजीके अनन्य भक्त हैं। अनन्य यानी जिसे भगवान्के अलावा अन्य किसीकी गति नहीं।

भगवान् एवं भक्तमें कितनी साम्यता है कि एक मंगलभवन हैं (भगवान् राम), तो उनके भक्त हनुमान्जी मंगलमूर्ति हैं। इसी प्रकार भगवान् अमंगलको हरनेवाले हैं तो हनुमान्जी अमंगलको जड़मूलसे उखाड़नेमें समर्थ हैं। यहाँ ध्यान देनेयोग्य मुख्य बात भगवान्की परम उदारता एवं भक्तवत्सलता है कि उन्होंने अपने भक्तको न केवल अपनी बराबरीका दरजा दिया बल्कि अपनेसे अधिक सामर्थ्यवान् बना दिया, जैसा कि हनुमान्जी अमंगलको जड़मूलसे नष्ट करनेकी शक्ति रखते हैं, यद्यपि यह शक्ति भी उन्हें अपने इष्ट रामसे ही सुलभ हुई है।

अब आगे ध्यान दीजिये—भगवान् मंगलभवन (मन्दिर) हैं एवं उनके भक्त हनुमानजी मंगलमूर्ति। मन्दिर एवं मूर्ति—दोनों एक-दूसरेसे जुड़े हैं। जहाँ एक ओर मन्दिरकी शोभा मूर्तिसे है, वहीं दूसरी ओर मूर्तिकी शोभा मन्दिरसे है। मन्दिरके बिना मूर्ति अधूरी है तो मूर्तिके बिना मन्दिर अधूरा है। भाव यह है कि भगवान्‌के बिना भक्त एवं भक्तके बिना भगवान् अधूरे हैं। वे एक-दूसरेके बिना नहीं रह सकते।

यह भगवान्की परम उदारता एवं भक्तके प्रति उनका असीम प्रेम है कि उन्होंने हनुमान्जीको अपनेसे अधिक पजनीय बना दिया। **‘राम ते अधिक राम कर**

दासा' को भगवान् रामने ही चरितार्थ किया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आज भी संसारमें भगवान् रामके मन्दिरोंकी अपेक्षा भक्त हनुमान्जीके मन्दिर अधिक मिलेंगे अर्थात् अपने भक्तकी सेवासे भगवान् अधिक प्रसन्न होते हैं। यही कारण है कि भगवान् राम जानकी एवं लक्ष्मणजीके सहित भक्त हनुमान्के हृदयमें सदा विराजते हैं और जहाँ भगवान् श्रीराम निवास करते हैं, वह स्थान स्वाभाविकरूपसे ही मंगलमय हो जाता है। जब भगवान्ने प्रवर्षण पर्वतपर वास किया था तो उस समय उसके आस-पासका समस्त वन्य-प्रान्त मंगलमय हो गया था—

मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥

इसी प्रकार चित्रकूट-निवासके विषयमें भी गोस्वामीजीने लिखा है—

सो बनू सैलु सुभायँ सुहावन । मंगलमय अति पावन पावन ॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासु । सुखसागर जहँ कीन्ह निवास ॥

जब वन-पर्वत आदि स्थावर भगवान्‌के निवाससे मंगलमय हो जाते हैं, तो परमभक्त हनुमान्‌जीके मंगलमूर्ति होनेमें भला क्या आश्चर्य है ?

भगवान् एवं भक्त दोनों एक-दूसरेका स्मरण करते रहते हैं। एक बार भक्त भगवान्को क्षणभरके लिये भूल सकता है; परंतु भगवान् अपने अनन्य भक्तको सदा याद रखते हैं। सच्चे भक्तके पास भगवान् स्वयं चलकर जाते हैं, जैसे केवट एवं शबरीके पास राम स्वयं चलकर गये थे। यही मंगलभवन एवं मंगलमूर्तिका सही अर्थोंमें भाव है।

अन्तमें यही निवेदन है कि जहाँ राम हैं, वहीं विश्राम (शान्ति) है। यह कलियुग अशान्ति—दुःखसे भरा है। मनुष्य यदि सुख, शान्ति चाहता है, तो स्वयंको रामसे जोड़ ले, उसका जीवन सार्थक हो जायगा। गोस्वामीजीके शब्दोंमें—

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।

सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को॥

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।

पायो परम बिश्राम् राम समान प्रभु नाहीं कहँ ॥

कवि एवं भक्तशिरोमणि श्रीधन्नाजदृजी

(श्रीबलविन्द्रजी 'बालम')

भक्तशिरोमणि श्रीधन्नाजट्टजी राजस्थानके टोंक क्षेत्रके धुअन गाँवमें सन् १४१५ ई०को जट्टवंशमें पैदा हुए थे। आजकल इस स्थानपर एक प्राचीन कुआँ है तथा गुरुद्वारा साहिबकी इमारत निर्माणाधीन है। भक्त धन्नाजट्टजी अपने समयके विख्यात कवि, समाजसेवी, समाजसुधारक तथा कई भाषाओंके ज्ञाता थे। श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें उनके चार शब्द (कविताएँ) अंकित हैं। इन शब्दोंमें उन्होंने मानवीय मूल्योंको दृष्टिमें रखकर बहुत ही सुन्दर तथा प्रभावशाली अलंकार, प्रतीक तथा बिम्बोंका वर्णन किया है।

उनका कहना है कि प्रत्येक मानवमें एक ऐसी ज्योति है कि अगर वह प्रज्वलित हो जाय तो वह जिस तरहकी भी प्राप्ति चाहे पा सकता है, परंतु इस ज्योतिका जलानेके लिये शुद्ध आदतें, शुद्ध आचरण, सहृदयता, परिश्रम, लगन, भक्ति, साधना, प्रेरणा, संकल्पशक्ति, इच्छाशक्ति तथा एकाग्रताकी आवश्यकता होती है। जब एकाग्रचित्त होकर निष्कामतासे मेहनत करो तो उस मेहनतकी मंजिलकी प्राप्तिमें प्रत्यक्षरूपमें भगवान् ही दर्शन दे देते हैं। भाव कि जिस मंजिलकी प्राप्तिके लिये आपने एकाग्रचित्त होकर दुनियाके धन्धे—विकार छोड़कर मेहनत-भक्ति की, उस मंजिलकी प्राप्ति ही परमात्माकी प्राप्ति है। भक्तशिरोमणि धन्नाजट्टजीकी प्राप्ति भी कुछ इस तरहकी ही है। उनके जीवनसे कई दन्तकथाएँ जुड़ी हुई हैं।

भक्तशिरोमणि धन्नाजट्टजी कृषकपरिवारसे सम्बन्ध रखते थे। वे अपने घरका गुजारा कृषिकी आयसे करते थे। बचपनसे ही वे दयालु, सत्यके पुजारी, सहृदय, सीधे-सादे तथा सरल स्वभावके थे। एक बार वे त्रिलोचन नामक ब्राह्मण; जो शालग्राम ठाकुरजीकी पूजा करते थे, के सम्पर्कमें आये। भक्त धन्नाजीने त्रिलोचनजीसे कहा कि वे भी ठाकुरजीकी पूजा करना चाहते हैं। त्रिलोचनने पत्थररूपी ठाकुरजीको देनेके बदले एक गायकी माँग की। उन्होंने त्रिलोचनको गाय दे दी तथा ठाकुरजी ले लिये। भक्त धन्नाजट्टजी भोले-भाले तथा सच्चे इन्सान थे। उनकी लगन सच्चे हृदयसे प्रभुसे जुड़ चुकी थी। इसी वजहसे उन्होंने पत्थररूपी ठाकुरके बदले गाय दे दी थी। भक्त धन्नाजट्टजीने एकाग्रचित्त होकर भक्ति की। उनमें मानवतारूपी ज्योति प्रज्वलित हो चुकी थी, जिससे सत्यके

दरवाजे खुलते गये। यह भी प्रसंग आता है कि उन्होंने लस्सी



और रोटीका भोग लगाकर प्रभुके दर्शन किये। उनको अपने मन-मन्दिरमें एक दिव्य शक्तिके दर्शन हुए, जिससे उनपर भक्तिभावका गहरा रंग चढ़ गया। वे अपने तन-मन-आत्मासे शुद्ध तथा बाहरी विकारोंसे मुक्त हो चुके थे। वे लोगोंकी सेवामें जुट गये तथा क्षेत्रमें भक्त धन्नाजट्टजीके भक्तिभावकी प्रशंसा एवं ख्याति दूर-दूरतक होने लगी। उनके द्वारपर दूर-दूरसे बुद्धिजीवी, विद्वान्, साधु-संत, महात्मा इत्यादि धर्मचर्चार्थके लिये आने लगे। उन्होंने प्रभुभक्तिकी आशीर्वादयुक्त वाणियाँ (रचनाएँ) भी लिखीं। अपने ज्ञान-लेखनको और मानवतावादी बनानेके लिये उन्होंने काशीमें जाकर स्वामी रामानन्दजीको गुरु बना लिया। रामानन्दजीसे कई वर्ष शिक्षा-दीक्षा लेकर उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया तथा उच्चकोटिकी वाणियाँ लिखीं। उनकी कविताएँ (चार शब्द) श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें शोभायमान हैं, जिनकी बदौलत वे संसारमें अमर हैं। उनके शब्दोंकी कुछ पंक्तियाँ—‘ज्योति समाए समानी जाकै अछलो प्रभु पहचानिआ ॥ धनै धन पाया धरणीधर मिलि जन संत समाया ॥’ तथा पाषणि कीटु गुपतु होइ रहता, ताचो मारगु नाही। कहै ‘धन्ना’ पुरन ताह को, मत रे जीअ डराही।’

भक्तशिरोमणि धन्नाजट्टजीकी वाणीमें सिमरन, भक्ति, सादा जीवन, प्रभुकृपा, मनकी पवित्रता, निरंकारकी भक्ति, श्रद्धा इत्यादि तत्त्वोंका उल्लेख मिलता है। उनका जीवन-चरित प्रभुके प्रति श्रद्धाका प्रतीक और भक्तोंके लिये सदैव प्रेरणा-स्रोत रहेगा।

परोपकार

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

[श्रीरामेश्वरजी टांटिया (१९१०—१९७७ ई०) राजस्थानके एक सम्भ्रान्त परिवारके थे तथा ये पन्द्रह वर्षकी आयुमें राजस्थान छोड़कर कलकत्ता आ गये थे। संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए इन्होंने पुरुषार्थके बलपर स्वयं अपने जीवनका निर्माण किया। ये कई वर्षोंतक सांसद रहे। इन्होंने अपनी लेखनीद्वारा राजस्थानकी कई सत्य घटनाएँ प्रस्तुत की हैं, जो वहाँके सामान्य जनजीवनको प्रदर्शित करती हैं। प्रस्तुत वृत्तान्त उसी संग्रहका एक अंश है— सम्पादक]

आजसे पचास-साठ वर्ष पहले राजस्थानमें बड़े शहरोंके सिवा अन्यत्र कहीं भी डॉक्टर नहीं थे। अगर कोई धनी व्यक्ति ज्यादा बीमार हो जाता तो इलाजके लिये जोधपुर या बीकानेरसे डॉक्टरको बुलाया जाता। हमारे कस्बेमें एक बार एक सेठके इलाजके लिये कलकत्तासे आशुबाबू नामके एक बड़े बंगाली डॉक्टर आये थे। इन्हें देखनेके लिये स्थानीय लोगोंके अलावा बहुत-से ग्रामीण भी आये थे; क्योंकि एक सौ रुपया प्रतिदिनकी फीस उस समय एक अद्भुत और अनोखी बात थी।

बीमारियाँ तो उस समय भी होती थीं, परंतु डॉक्टरी इलाजका प्रचलन नहींके बराबर था। सर्दी, जुकाम, सिर-दर्द और यहाँतक कि मलेरिया और मियादी बुखारमें कालीमिर्च और लौंगकी चाशनी या दशमूलका काढ़ा दे दिया जाता था। अधिकांश रोग इन्हीं देशी जड़ी-बूटियोंसे ही दूर हो जाते।

वैद्योंके अलावा हर मोहल्लेमें एक-दो सयानी स्त्रियाँ रहतीं, जिनकी कोथली (थैली)—में जच्चा और बच्चा दोनोंके लिये दवाएँ रहतीं। बीमारके घरवालोंको इन्हें बुलानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। खबर पाकर वे स्वयं ही पहुँच जातीं और रोगीकी सेवामें लग जातीं। किसी प्रकारकी फीस या औषधिके मूल्यका तो प्रश्न ही नहीं था बल्कि ऐसे मौकोंपर पुराने वैर-बदले भी समाप्त हो जाते।

थोड़े वर्षों बाद, शायद सन् १९३० ई० के लगभग, एकाध डॉक्टर भी आ गये थे, जिनके गलेमें या कोटके ऊपरकी जेबमें रबरका स्टेथिस्कोप पड़ा रहता। फीस अधिकतम दो रुपये होती, किंतु उस समय लोगोंको यह भी अखरती थी, इसलिये अधिकांश रोगी झाड़-फूँक या स्थानीय वैद्यजीका ही सहारा लेते।

वैद्यका बेटा अपने-आप वैद्य हो जाता। आयुर्वेदकी डिग्रियाँ तो थी नहीं। परंतु बड़ोंद्वारा प्राप्त नाड़ी और औषधिका ज्ञान उन्हें यथेष्ट रहता। आजकलकी तरह थूक, खून और मूत्रकी परीक्षाके साधन न होनेपर भी नाड़ी-ज्ञानद्वारा ये लोग रोगका सही निदान कर देते। कुछ एक पुश्तैनी वैद्योंके पास विश्वसनीय और कीमती आयुर्वेदिक दवाएँ अच्छी मात्रामें पायी जातीं, जिनका असर अचूक होता।

शायद सन् १९३६ ई०की बात है। हमारे कस्बे और आस-पासके गाँवोंमें बड़े जोरका हैजा फैला। प्रतिदिन बीस-तीस आदमी मरने लगे। लोगोंमें घबराहट फैल गयी। जिनके पास साधन थे, वे दूरके गाँवोंमें अपने सगे-सम्बन्धियोंके यहाँ चले गये। यहाँतक कि डॉक्टर और वैद्य भी चले गये; क्योंकि जिनसे फीस मिलनेकी आशा थी, वे तो पहलेसे ही जा चुके थे। बच गये थे गरीब लोग जिनके पास फीस तो क्या, दवाके दाम भी नहीं थे। इतना ही नहीं, रोगका प्रकोप ज्यादा बढ़ा तो घरवाले भी रोगियोंको छोड़कर भागने लगे।

घर-घरमें रोगी पड़े थे और डॉक्टर-वैद्योंमें केवल एक ही रह गये थे, कविराज ब्रजमोहन गोस्वामी। परिवारवालोंने और मित्रोंने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे कस्बा छोड़ दें; आखिर अकेले कर ही कितना पायेंगे? साथ ही, जान भी जोखिममें रहेगी। उनका जवाब था कि मेरे पितामह और पिता माने हुए वैद्यराज थे। उन्होंने कभी संकटके समय रोगीको नहीं छोड़ा। यहाँतक कि गरीबोंके लिये दवाके सिवा कभी-कभी पथ्यकी भी व्यवस्था अपने पाससे की। इस समय अगर मैं भागकर चला जाऊँगा, तो इन असहायोंका क्या होगा? मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, एक दिन होगी ही, फिर कर्तव्यविमुख होकर अपकीर्तिकी मृत्यु क्यों हो?

हैजेका सबसे ज्यादा प्रकोप था, नीची समझी जानेवाली जातियोंके मुहल्लोंमें। वीरान गाँव, भयावह गलियाँ, सूने घर और मुर्दोंकी सड़ाँधसे पूरा गाँव श्मशान-सा नजर आता था। गोस्वामीजी सुबह छः बजे उठते और दोपहर बारह बजेतक बीमारोंको देखते रहते। फिर खाना खाकर बिना सुस्ताये रातके दस बजेतक वही कार्यक्रम चालू रहता। उस समयतक हैजेके इंजेक्शन और एलोपैथिक दवाएँ ईजाद हो चुकी थीं, पर वहाँ न तो इंजेक्शन देनेवाले डॉक्टर या कम्पाउण्डर थे और न दवाफरोश ही। वैद्यजीका तीन-चार हिम्मतवाले युवकोंने साथ दिया। मनो प्याजका रस निकालकर मटके भर लिये और ऊँटोंका मूत्र भी बड़ी मात्रामें इकट्ठा कर लिया। भगवान्का नाम लेकर वे दोनों औषधि रोगियोंको पिलाने लगे और इनसे ही चमत्कारिक लाभ होने लगा।

उस समय राजस्थानमें छुआछूत बहुत थी। गोस्वामीजी

कुछ दिनों बाद गोस्वामीजी बीमार पड़े। सैकड़ों व्यक्ति रोज उनके दर्शनको आते, लेकिन आयु समाप्त हो चुकी थी, वैद्यजीका देहान्त हो गया। सारे गाँवमें, विशेषकर हरिजनों और गरीबोंकी बस्तीमें शोक छा गया। उनके दाह-कर्ममें इतने स्त्री और पुरुष गये, जितने आजतक किसी भी व्यक्तिके नहीं गये थे। [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

निरवद्यसंयुजां

स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।

या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः

संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

(श्रीमद्भा० १०।३२।२२)

मेरी प्यारी गोपियो! तुमने मेरे लिये घर-गृहस्थीकी उन बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह मिलन—यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और निर्दोष है। यदि मैं अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्मके लिये तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभावसे, प्रेमसे मुझे उन्नत कर सकती हो, परंतु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ।

भक्त कवि श्रीसूरदासजीने महाभागा गोपांगनाओंके महा-भावमय प्रेमका अद्भुत चित्रण किया है और बताया है कि ब्रजांगनाओं (गोपियों)—का कृष्णप्रेम अनुपमेय है। उसकी किसी भी युगमें कहीं तुलना नहीं है। एक सखी दूसरी सखीसे कह रही है कि हे सखी! नेत्रोंने मेरा कहना नहीं माना, रोकनेपर भी वे श्यामसुन्दरकी तरफ देखने लगे, जिसके परिणामस्वरूप वे उनपर मोहित हो गये, जिससे आज यह हमारी दशा हुई है। यथा—

नैना कह्यौ न मानैं मेरौ।

मो बरजत बरजत उठि धाए, बहुरि कियौ नहिं फेरौ॥
निकसे जल प्रबाह की नाई, पाछैं फिरि न निहार्यौ।
भव जंजाल तोरि तरु बन के, पल्लव हृदै बिदार्यौ॥
तबहीं तैं यह दसा हमारी, जब येऊ गए त्यागि।
सूरदास प्रभु सों वे लुबधे, ऐसे बड़े सभागि॥

(अनुराग-पदावली)

गोपी कह रही है—(सखी!) मेरे नेत्र मेरा कहना नहीं मानते, मेरे बार-बार मना करनेपर भी वे उठकर (श्यामसुन्दरकी ओर) दौड़ पड़े और फिर लौटकर आये ही नहीं। वे जलके प्रवाहकी भाँति निकले तथा उन्होंने पीछे घूमकर देखा भी नहीं। उन्होंने हमारे संसारके जंजाल (सम्बन्ध)—रूपी वनके वृक्षोंको तोड़कर पल्लवके समान कोमल हृदयको विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार जबसे ये नेत्र भी छोड़ गये, तभीसे हमारी यह दशा हो गयी है। वैसे तो ये नेत्र महान् भाग्यशाली हैं कि प्रभुपर मोहित हो गये हैं।

गोपी कहती है कि हे सखी! जब मेरी आँखोंने मेरा कहना नहीं माना, तो फिर आगे भगवान् श्रीहरिकी शोभाको

ये भाग्यवान् नेत्रोंसे निहारने लगते हैं और जब निहारते हैं तो ललचा जाते हैं और एकटक देखने लगते हैं। यथा—
हरि छबि देखि नैन ललचाने।

इकटक रहैं चकोर चंद ज्यों, निमिष बिसरि ठहराने॥
मेरौ कह्यौ सुनत नहिं स्रवननि, लोक लाज न लजाने॥
गए अकुलाइ धाड़ मो देखत, नेकौ नाहिं सकाने॥
जैसैं सुभट जात रन सनमुख, लरत न कबहुँ पराने॥
सूरदास ऐसी इन्हि कीन्ही, स्याम रंग लपटाने॥

(अनुराग-पदावली १८६)

गोपी कह रही है—सखी! मेरे नेत्र श्यामसुन्दरकी शोभा देखकर लुब्ध हो गये हैं। जैसे चकोर चन्द्रमाको एकटक होकर देखता है, उसी प्रकार ये नेत्र पलकें गिराना भूलकर स्थिर हो गये हैं। मेरा कहना ये कानोंसे सुनते नहीं और समाजकी लज्जासे भी लज्जित नहीं होते। मेरे देखते-देखते ये आतुर होकर दौड़ गये, इन्होंने तनिक भी संकोच नहीं किया—जैसे अच्छा योद्धा युद्ध करते हुए कभी भागता नहीं है। ऐसा ही कार्य इन्होंने भी किया, ये श्यामसुन्दरके प्रेममें ही लिप्त हो गये हैं।

गोपी कहती है कि पहले नेत्रोंने हमारा कहा नहीं माना तो इसका फल यह हुआ कि उन्होंने हरिदर्शन किये और हरिदर्शनसे नेत्र ललचा गये; क्योंकि जो चीज अच्छी लगी, उसको देखकर ललचा जाना स्वाभाविक है और ललचानेके फलस्वरूप ये नेत्र भगवान्के दास हो गये और दास हो जानेके बाद क्या हुआ, यह आगेके पद पढ़नेसे स्वतः ज्ञात हो जायगा। यथा—

लोचन भए स्याम के चरे।

एते पै सुख पावत कोटिक, मो न फेरि तन हेरे॥
हा हा करत, परत हरि चरननि, ऐसे बस भए उनही॥
उन कौ बदन बिलोकत निसि दिन, मेरौ कह्यौ न सुनहीं॥
ललित त्रिभंगी छबि पै अँटके, फटके मोसों तोरि॥
सूर दसा यह मेरी कीन्ही, आपुन हरि सों जोरि॥

(अनुराग-पदावली १८५)

गोपी कहती है कि मेरे नेत्र प्रभुके दास हो जानेपर करोड़ों गुना आनंद पाते हैं। आनन्द पानेके फलस्वरूप अगली कड़ीमें इन्होंने मेरा ही साथ छोड़ दिया अर्थात् मेरे नेत्र मेरे नहीं रहे, श्यामके गुलाम हो गये और वह गोपी घबराकर यह बात अब अपनी माँसे किस ढंगसे कहती है, देखिये, अगले पदमें—

हे श्यामसुन्दर! आपसे प्रार्थना है कि यदि आप कृपा करके मुझे जन्म दें तो ऐसे स्थानोंपर मेरा जन्म हो, जहाँ आपकी मधुर मुरलीकी ध्वनि होती हो और मैं अपने कानोंसे उस मधुर मुरली ध्वनिको सुनती रहूँ, मेरा इस निर्वाण (मोक्ष)-से क्या प्रयोजन!

साधनोपयोगी पत्र

(१)

आत्मशक्तिमें विश्वासका फल

प्रिय भाई! सप्रेम राम राम। आपके पत्र प्राप्त हुए। उन्हें मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। आप बहुत घबरा रहे हैं और निराश तथा हतोत्साह होकर मानो चारों ओर अन्धकार देख रहे हैं। असफलता, विपत्ति और आधि-व्याधिमें ऐसा होना स्वाभाविक है। परंतु ऐसी बात वास्तवमें है नहीं। मनुष्यको कभी हतोत्साह और निराश नहीं होना चाहिये। गिरे हुए उठते हैं, दुर्बल सबल होते हैं, तिरस्कृत सम्मानित होते हैं और चारों ओर अन्धकार देखनेवाले प्रकाश पाते हैं। यह प्रकृतिका नियम है। कृष्णपक्षके बाद शुक्लपक्ष आता ही है, रातके बाद दिन होता ही है। अतएव आप इतना मत घबराइये। निराश होकर सर्वथा अपनेको अकर्मण्य मानकर महान् आत्मशक्तिका तिरस्कार न कीजिये। नित्यसंगी सर्वशक्तिमान् और हमारे-आपके अहैतुक प्रेमी परम सुहृद् भगवान्का अपमान न करें। भगवान्की घोषणा याद रखें—

‘मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि॥’

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

मुझमें चित्त लगा लो, फिर मेरे प्रसादसे—अनुग्रहसे सब कठिनाइयोंसे तर जाओगे। जो अनन्य पुरुष मेरी भलीभाँति उपासना करते हुए मेरा अनन्य चिन्तन करते हैं, उन नित्य मुझमें लगे हुए भक्तोंका ‘योगक्षेम’ मैं (स्वयं) वहन करता हूँ।

अतएव आप घबरायें नहीं। यह कभी मत सोचिये कि हम तो गिरे हुए हैं, गिरे ही रहेंगे। उठेंगे ही नहीं। यह सोचना ही आत्माका और भगवान्का अपमान करना है। आत्मदृष्टिसे कहा जाय तो जो आत्मा भगवान् शंकराचार्य, बुद्धदेव, जनक, भीष्म, युधिष्ठिर, अर्जुन आदिमें थी, वही आपमें है। सुप्त आत्मशक्तिको जाग्रत् करना आपके हाथ है। भगवान्के बलपर निराशा, निरुत्साह, कायरता, दीनता छोड़कर साधनमें लगे रहिये। आत्माकी अनन्त शक्तिपर विश्वास कीजिये। जो मनुष्य आत्मशक्तिपर विश्वास करके काममें जी-जानसे जुट जाता है—सफलताके बारेमें कभी सन्देह नहीं करता, उसके लिये अपने-आप ही

सफलताका मार्ग सुन्दर, प्रकाशमय और कुशकण्टकहीन बनता जाता है और ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों उसका अनुभव, उसकी कार्यकारी शक्ति, उसका ज्ञान, उसकी क्षमता, उसका साहस और उल्लास बढ़त चला जाता है। परंतु जो आत्मशक्तिमें या भगवान्के बलमें सर्वथा अविश्वास करके निराश होकर बैठ जाता है, कुछ भी करनेमें अपनेको नितान्त असमर्थ समझता है, उसको ब्रह्मा भी नहीं उठा सकते। वह विषादमय जीवन ही बिताता है। सब कुछ करनेमें समर्थ होकर भी वह सब प्रकारसे वंचित रह जाता है।

‘हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम।’ रामकी कृपासे और आत्माकी शक्तिसे क्या नहीं हो सकता? इनके लिये कोषमें ‘असम्भव’ शब्द ही नहीं है। आप जो अपनेको अब किसी कामका नहीं मानते हैं, सब ओरसे आश्रय और सहानुभूतिसे रहित मानते हैं; बस, आपके विषादका यही कारण है। निर्धनतासे विषाद नहीं होता, यह तो आत्मग्लानिसे ही होता है। शोकरहित होनेकी शक्ति आपके साथ भगवान्ने पहलेसे ही दे रखी है, वह नित्य आपके साथ रहती है। आपके अन्दर ही है। उसके रहते आप अपनेको निराश्रय और सहानुभूतिसे रहित क्यों मानते हैं। वही तो सच्चा और पक्का आश्रय है, जो बुरी-से-बुरी हालतमें भी साथ नहीं छोड़ता। भय, विभीषिका, वियोग, विषाद और विनाशमें भी जो साथ ही रहता है। आपके प्रत्येक दुःखमें जो दुःखका अनुभव करता रहता है, उस महामहिम नित्य आश्रयको बिसारकर ही आप दुःखी हो रहे हैं। आप इसी अवस्थामें आज ही सुखी हो सकते हैं, यदि उसे देख पायें—उसका अनुभव कर सकें। आपने मेरे लिये लिखा कि ‘आप सर्वशक्तिमान् हैं, सब जगह आपका निवास है; यह हमारा पक्का विश्वास है। हम अब केवल आपके ही शरण हैं, आपको ही अपनेको अर्पण करते हैं। हमारा रास्ता आप ही कीजिये।’ सो भैया! यह आपका पागलपन है। आत्माकी दृष्टिमें मुझे सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी मानते हैं तब तो ठीक ऐसे ही आप भी हो। अन्य किसी दृष्टिसे मानते हैं तो वह आपका सर्वथा भ्रम है, इस भ्रमको तुरंत छोड़ दीजिये, इससे कोई लाभ न होगा। उन परमात्माके शरण जाइये, जो वस्तुतः सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वलोक-

१. किसी प्राणीसे घृणा या द्वेष न करो। २. किसीकी निन्दा न करो। ३. धनके कारण अपनेको कभी ऊँचा मत समझो। ४. भगवान्की दयाका अनुभव करो। ५. दुःखमें उनकी दयाका विशेष अनुभव करो। ६. सुखमें उन्हें भूलो मत और ७. सदा-सर्वदा उनके स्वरूपके चिन्तन और नामके जपका अभ्यास करो। शेष प्रभूकृपा।

(३)

गयाश्राद्धकी महिमा

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, आपके माता-पिता, चाचा-चाचीका स्वर्गवास हो चुका है, उनका गयाश्राद्ध करनेकी आपकी इच्छा थी, परंतु कुछ समस्याओंके कारण आप नहीं कर सके। अब वर्तमान समयमें आपका स्वास्थ्य खराब रहता है, इसलिये गयाश्राद्धका पूर्ण कृत्य करनेमें आप अपनेको समर्थ नहीं पाते हैं। आपने पत्रमें यह भी पूछा है कि हरिद्वारमें कोई संस्था पिण्डदान कराती है, वहाँ पिण्डदान कर देनेसे क्या वह गयाके समान मुक्तिदायक होगा?

अपने शास्त्रोंमें पिण्डदानके लिये गयाका सर्वोपरि माहात्म्य है, यह महिमा गयास्थानकी है। हरिद्वारमें कुशावर्त-घाटपर पिण्डदानका कार्य सम्पन्न होता है। इस प्रकार प्रायः सभी तीर्थोंमें श्राद्ध तथा पिण्डदान करनेकी विधि है, परंतु गयामें श्राद्ध, पिण्डदान सभीको करना चाहिये। पुत्रके लिये शास्त्रोंमें तीन बातें मुख्यरूपमें बतायी गयी हैं—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।

गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

(देवीभागवत ६।४।१५)

अर्थात् १-जीवित अवस्थामें माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना, २-उनकी मृत्युके अनन्तर श्रद्धापूर्वक श्राद्धमें अपने सामर्थ्यानुसार खूब भोजन कराना एवं ३-उनके निमित्त गयामें पिण्डदान करना—ये तीन बातें पूरी करनेवाले पुत्रका पुत्रत्व सार्थक है।

वैसे गयामें पूर्णरूपसे श्राद्ध करनेमें सत्रह दिनका समय लगता है, परंतु यदि आप असमर्थ हैं तो सात दिन, पाँच दिन, तीन दिन अथवा एक दिनमें भी गयाश्राद्धका कार्य सम्पन्न कर सकते हैं।

आपने लिखा कि भतीजेके द्वारा श्राद्ध कराया जा सकता है क्या? सो निवेदन है कि भतीजेके माता-पिता नहीं हैं तो उसे भी अपने माता-पिताका श्राद्ध करना चाहिये। इसके साथ ही उन्हें आपके माता-पिताके निमित्त भी पिण्डदान करना चाहिये, कारण आपलोग एक ही परिवारके हैं तथा यह उनका कर्तव्य है। इसी प्रकार आपका भी कर्तव्य है कि आप अपने माता-पिताका गयामें जाकर श्राद्ध करें और उनके साथ ही अपने चाचा-चाचीको भी पिण्डदान दें। गयामें अपने माता-पिताके अतिरिक्त अपने जाने-अनजाने सभी सम्बन्धियों तथा मित्रोंके निमित्त पिण्ड देनेकी व्यवस्था है। अतः सबके निमित्त

पिण्ड देना चाहिये। अलग-अलग प्रत्येक व्यक्तिका गयाश्राद्ध करनेका कर्तव्य बनता है।

आपने लिखा कि गयाश्राद्धकी पूर्णताके लिये क्या वाराणसी तथा प्रयागमें श्राद्ध करना अनिवार्य है? सो ऐसी कोई बात नहीं है, इसका नियम यह है कि गया जाते समय मार्गमें जो भी तीर्थ पड़ते हैं, उनमें श्राद्ध करना चाहिये। आप यदि अशक्त हैं तो गया जाकर तीन दिन अथवा एक दिनका श्राद्ध कर सकते हैं। यदि जानेमें एकदम असमर्थ हों तब फिर भतीजेके द्वारा भी कराना उचित ही है। शेष प्रभुकृपा।

(४)

साधनसिद्धिमें अभिमान तथा बहिर्मुखता बाधक है

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका एक पत्र प्राप्त हुआ। जिसमें आपने गोशाला बनानेकी तथा गोसेवामें संलग्न होनेकी इच्छा व्यक्त की। आपकी यह भावना बड़ी शुभ है, गोसेवासे बढ़कर दूसरा कोई कार्य नहीं है, परंतु आपने गोशाला बनानेके लिये ट्रस्टकी स्थापना, चन्दा इकट्ठा करना तथा गोमयसे ओषधि आदिका निर्माण करना—इन सब कार्योंमें अपनी रुचि दिखायी। ये कार्य तो बहुत अच्छे हैं, यथासम्भव करने भी चाहिये, परंतु इन सब कार्योंके लिये आपके पास साधन क्या हैं? इसपर भी पहले विचार कर लेना चाहिये।

गोमाताको प्रतिदिन भोजन चाहिये, आजकलके समयमें बार-बार चन्दा इकट्ठा करना सबके लिये सम्भव नहीं है, अतः अपने साधन और अपनी क्षमतापर विचार करके ही आगे पैर रखना चाहिये। इसकी अपेक्षा पूर्वमें स्थापित किसी गोशालासे अपनेको जोड़कर उसमें सहयोग करना तथा सेवा करना ज्यादा सरल है। यदि आपके पास साधनकी सम्पन्नता हो तो नये गोसदन भी खोल सकते हैं।

आपने लिखा कि आप अपने पिताजीकी स्मृतिमें गोशाला बनाना चाहते हैं—यह बात तो बहुत अच्छी है, परंतु संतोंकी दृष्टिमें यह भी एक प्रकारकी वासना ही है। इससे भी उत्तम बात यह है कि भगवान्‌के नामपर गोशाला बनायी जाय। इसमें निष्कामता अधिक है। अभिमान भी अपेक्षाकृत इसमें कम आनेकी सम्भावना रहेगी। आपने अभिमान और बहिर्मुखताके सम्बन्धमें लिखा, सो अभिमान और बहिर्मुखता किसी भी कार्यमें न आये इसके लिये निरन्तर सावधान रहनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक कार्य करनेमें भगवत्-शरणागतिका भाव बना रहे तो अभिमान और बहिर्मुखतासे किसी रूपमें बचा जा सकता है। शेष प्रभुकृपा।

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा प्रातः ५।५० तक द्वितीया रात्रिमें ३।२८ तक तृतीया " १।१६ तक	गुरु शुक्र	श्लेषा रात्रिमें २।२२ तक मघा " १२।५८ तक	२३ जुलाई २४ "	सिंहराशि रात्रिमें २।२२ बजे, चन्द्रदर्शन, स्वामी करपात्री-जयन्ती, राष्ट्रिय श्रावणमासारम्भ। मूल रात्रिमें १२।५८ बजेतक, स्वर्णगौरीव्रत, मधुश्रवा (मिथिला तथा गुजरात)।
चतुर्थी " ११।२१ तक	शनि	पू० फा० " ११।५१ तक	२५ "	भद्रा दिनमें १२।१९ बजेसे रात्रिमें ११।२१ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी " ९।४५ तक षष्ठी " ८।३२ तक सप्तमी " ७।४६ तक	रवि सोम मंगल	उ० फा० " ११।३ तक हस्त " १०।३७ तक चित्रा " १०।३८ तक	२६ " २७ " २८ "	कन्याराशि प्रातः ५।३९ बजेसे, नागपंचमी, तक्षकपूजा, ऋग्वेदियोंका उपाकर्म। श्रावण सोमवारव्रत। तुलाराशि दिनमें १०।३८ बजेसे, भद्रा रात्रिमें ७।४६ बजेसे, गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती।
अष्टमी " ७।२९ तक नवमी " ७।४२ तक दशमी " ८।२९ तक एकादशी " ९।४१ तक	बुध गुरु शुक्र शनि	स्वाती " ११।८ तक विशाखा " १२।९ तक अनुराधा " १।४० तक ज्येष्ठा " ३।३६ तक	२९ " ३० " ३१ " १ अगस्त	भद्रा प्रातः ७।३८ बजेतक। वृश्चिकराशि सायं ५।५३ बजेसे। मूल रात्रिमें १।४० बजेसे। धनुराशि रात्रिमें ३।३६ बजेसे, भद्रा दिनमें ९।५ बजेसे रात्रिमें ९।४० बजेतक, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), झूलनयात्रा प्रारम्भ।
द्वादशी " ११।१८ तक त्रयोदशी " १।११ तक	रवि सोम	मूल अहोरात्र मूल प्रातः ५।५४ तक	२ " ३ "	श्रीविष्णुपवित्रारोपण। श्लेषा नक्षत्रके सूर्य दिनमें २।१४ बजेसे, मूल प्रातः ५।५४ बजेतक, सोमप्रदोष, श्रावण सोमवारव्रत।
चतुर्दशी " ३।१३ तक	मंगल	पू० षा० प्रातः ८।३३ तक	४ "	मकरराशि दिनमें ३।११ बजेसे, भद्रा रात्रिमें ३।१३ बजेसे, श्रीशिवपवित्रारोपण (उड़ीसा)।
पूर्णिमा रात्रिशेष ५।१२ तक	बुध	उ० षा० दिनमें ११।४ तक	५ "	भद्रा दिनमें ४।१४ बजेतक, झूलनयात्रा समाप्त, स्नान-दान-व्रतादिकी पूर्णिमा, रक्षाबन्धन, संस्कृत दिवस, श्रावणीकर्म (यज्ञोपवीत पूजन)।

कृपानुभूति

(१)

मनकी वेदना

मैंने और मेरे मित्रों ने घूमने का कार्यक्रम बनाया तो मैंने कहा कि हरिद्वार चलते हैं, घूमना भी हो जायेगा और गंगा-स्नान भी। मेरा सुझाव सबको पसन्द आया और हमलोग बसद्वारा हरिद्वार पहुँचे। मैं सबसे ज्यादा प्रसन्न था; क्योंकि काफी अरसे बाद कहीं बाहर जाने का मौका मिला था।

गंगा-स्नान के बाद हमलोग हरिद्वार से ऋषीकेश के लिये रवाना हुए। वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर मन ऐसा प्रफुल्लित हो गया, जैसे—काले-काले बादलों को देखकर मोर आनन्दित होकर नृत्य करने लगता है। एक बार तो मैं अपने-आपको कोसने लगा कि अब तक ऐसे सौन्दर्य से मैं क्यों वंचित रहा!

हमारा कार्यक्रम तीन दिन रुकने का था, लेकिन मेरे विशेष आग्रह पर दो दिन की अनुमति सभी मित्रों ने दे दी।

चूँकि अब हमारे पास समय का अभाव नहीं था, इसलिये हम हर स्थान को बड़े आराम से देख रहे थे।

दुबारा गंगा-स्नान करने के बाद हमलोग स्वर्गाश्रम देखने गये, वहाँ एक परिसर में कई श्लोक एवं रामायण की चौपाइयाँ लिखी हुई थीं। मैं एक-एक शब्द को बड़ी तल्लीनता से समझने की कोशिश कर रहा था, तभी मेरी नजर तुलसीदास जी द्वारा रचित इस चौपाई पर केन्द्रित हो गयी—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

इसे पढ़ने के बाद तो मेरा मन बिलकुल उदास हो गया। मेरा सारा उत्साह क्षीण हो गया और आगे घूमने की इच्छा ऐसे समाप्त हो गयी जैसे अग्नि पर किसीने अचानक जल डाल दिया हो या कोई तैरती हुई नाव पानी में डूब गयी हो। मैंने मित्रों से कहा चलो, वापस चलते हैं। पहले मैं लगातार सबसे बातें करता जा रहा था, लेकिन अब मैं बिलकुल शान्त था। मुझे किसी की कोई बात अच्छी नहीं लग रही थी। कोई हँसता तो लगता कि वह मेरा उपहास कर रहा है।

हमलोग वापस आगरा आने के लिये बस में बैठ चुके थे। मैं सबसे अलग पीछे जाकर बैठ गया। मेरे मित्र कह रहे थे कि सबसे ज्यादा बातें करने वाला बिलकुल चुप क्यों है? एक मित्र बोला, 'अरे गंगा-स्नान करने के बाद यह

मौनी बाबा हो गया है।' दूसरा बोला, 'चलो अच्छा है, नहीं तो पूरे सफर में ये मेरा दिमाग खाली कर देता।'।

लेकिन मुझे तो ऐसा लग रहा था कि गोस्वामी जी की चौपाई '*निर्मल मन जन सो मोहि पावा*'—मेरा पीछा कर रही है। ये क्या! ये चौपाई तो मेरी सीट के ऊपर भी लिखी है। मैंने पास बैठे व्यक्ति से कहा—ये देखो क्या लिखा है, पढ़ा आपने? वह बोला अरे! कौन-सी नई बात लिखी है? लिखा है 'कृपया शान्ति से बैठें।' मैंने अपने मस्तिष्क को झटका दिया, शायद मेरा मानसिक सन्तुलन ठीक नहीं था। लेकिन मेरा मन तो एक ही बात सोच रहा था, अब मेरा दुनियाँ में कोई नहीं है, मैं अनाथ हो गया। जिस ईश्वर को अपना मानता था, जो मेरे जीवन का सहारा था, जिसके सामने बैठकर मैं अपना दुःख भूल जाता था, अब वह मुझ से बहुत दूर है। जो आस्था मेरे अन्दर थी वह भी डॉवाडोल होने लगी, जैसे—बिना माँझी की नाव भँवर में डूब रही हो।

गोस्वामी जी के अनुसार तो भगवान् को छल-कपट रहित, द्वेष रहित व्यक्ति ही पसन्द है, लेकिन मैं दिन में पता नहीं कितनी बार झूठ बोलता हूँ, कितनी बार माँ एवं पिता जी को अपनी जिद पूरी करवाने के लिये सताया होगा। मेरी ये बचपन से जुड़ी आदतें पता नहीं कब तक छूटें या फिर न भी छूटें। मन को बिलकुल शुद्ध करना होगा। मालूम नहीं ये सब कैसे होगा और मैं ठहरा एक व्यापारी और इसमें तो झूठ-सच बोलना ही पड़ता है। ऐसा सोचते-सोचते पता नहीं कब आगरा आ गया।

घर पहुँचकर मैं उदास रहने लगा, परिवार वाले सोच रहे थे बाहर घूमकर आया है—इस कारण यहाँ मन नहीं लग रहा होगा, अपने-आप ठीक हो जायगा, लेकिन मेरी वेदना को कोई नहीं समझ पा रहा था। भरा-पूरा परिवार होने के बावजूद मैं अपने-आपको बिलकुल अकेला महसूस कर रहा था। हमारे घर में एक छोटा-सा मन्दिर भी है। पहले मैं नित्य दर्शन करता था, लेकिन न जाने क्यों अब मुझ में इतना साहस नहीं था कि मैं उसके अन्दर भी जा सकूँ। मुझे अपने आपसे ग्लानि-सी होने लगी। मैं सोचने लगा मेरा जीवन ही व्यर्थ है, मैं तो ईश्वर के सन्मुख मुँह दिखाने के काबिल भी नहीं रहा।

फिर एक दिन अचानक मेरा बहुत पुराना मित्र घर

जी०आर०पी० कर्मियोंने बताया कि ऐसी अद्भुत घटना हमने नहीं देखी कि पूरी ट्रेन निकल गयी और शरीर ज्यों-का-त्यों ही रहा। अन्य कुछ न बोलकर केवल अपना समुचित अन्तिम संस्कार करानेके लिये ही बोले और शान्त हो गये। यह ईश्वरकी चमत्कारिक कृपा ही है, अन्यथा हमें उनके विषयमें कोई जानकारी भी न हो पाती और हम उनके प्रति अपने अन्तिम दायित्वसे भी वंचित रह जाते; हमें तो यही लगता है कि जो प्रभुके कार्यमें अपना जीवन अर्पण करता है, उसकी सद्गतिका जिम्मा स्वयं भगवान् उठाते हैं।—**पवनकुमार वर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अनुभूति

बात है कई वर्ष पूर्वकी। तब मैं दुर्गासप्तशतीके कुछ अंशका नियमितरूपसे पाठ करता था। करुणामयी जगज्जननीकी कृपासे एक विरक्त महात्माका सम्पर्क हो गया। वे भी शक्तिके उपासक थे। वे श्रीराधा, सीता, पार्वती तथा नवदुर्गा आदि कल्याणमयी देवियोंकी प्रायः चर्चा करते और उनकी उपासनाकी विधि तथा माहात्म्य सुनाते। मेरा मन जगदम्बा ललिताम्बाकी ओर धीरे-धीरे झुक रहा था, यद्यपि उनके सम्बन्धमें अपना कोई ज्ञान नहीं था। एक श्लोक मैंने अवश्य पढ़ा था—

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो

यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।

श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां

भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

मुक्तिकी अपेक्षा प्रायः सभी मनुष्य करते हैं; किंतु भोगका आकर्षण असाधारण होता है। जागतिक भोगोंकी रसानुभूतिके अनन्तर परमार्थकी नितान्त आवश्यकता विरले ही पुण्यमय पुरुषोंके मनमें उदित होती है और जहाँ भोग और मोक्ष दोनोंकी सिद्धि हो, आकर्षण स्वाभाविक है। पराम्बाकी दया, उक्त सन्तने श्रीसुन्दरीकी ही उपासनापर बल देना आरम्भ किया। अर्चन-विधि बतायी और अपनी संनिधिमें कई अर्चन करवाये भी।

उन्हीं दिनों, शायद मार्गशीर्ष मासका कृष्णपक्ष था। एक दिन रात्रिमें मैं शहरसे लौट रहा था। लगभग नौ बजे थे। फलोंकी दूकान थी। मेरी दृष्टि एक दूकानपर पड़ी। दो अत्यन्त सुन्दर पके पीले-पीले आम थे। मेरे पास कुल चार आने पैसे थे। फिर भी आमका दाम मैंने पूछ लिया। दूकानदारने डेढ़ रुपया बताया।

मैं चुपचाप लौट पड़ा। फलोंमें मुझे सर्वाधिक प्रिय आम लगता है। इस कारण बार-बार मुझे उन आमोंकी स्मृति आ रही थी। साढ़े नौ बजेके आस-पास मैं अपने निवासपर पहुँचा।

उस दिन भूख न होनेके कारण मैंने अपना भोजन न बनानेके लिये कह दिया था, पर लौटनेपर भूख भी मालूम हुई। बत्ती बुझाकर मैं चारपाईपर लेट गया। भूखके

कारण नींद नहीं आ रही थी और बार-बार मुझे उन दो आमोंकी याद आ जाती थी। मैंने मन-ही-मन कहा 'मेरी आराध्या तो जगज्जननी, सर्वेश्वरी एवं सर्वान्तर्यामिनी हैं। माँ अपने बच्चेकी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति करती हैं। सबका रक्त-मांस खा जानेवाली सिंहिनी भी तो अपने बच्चोंकी सेवा करती हैं फिर अनन्त श्रीसम्पन्न, अनन्त महिमाशालिनी, करुणामयी माँ अपने बालककी इच्छा क्यों पूरी न करे। मैं जगदम्बाका नाम-स्मरण करता हूँ। मेरा लोक-परलोक सब उन्हींकी दयापर अवलम्बित है। यह सर्वथा सत्य है, किंतु है तो यह सुनी-सुनायी बात ही। मैंने तो अपने नेत्रोंसे कभी कुछ नहीं देखा, कभी कुछ भी नहीं अनुभव किया। आज मैं परीक्षा करना चाहता हूँ। माताकी ममता और उसके प्यारका अनुभव करना चाहता हूँ। जाड़ेकी रात्रि है। दस बजे हैं। सब सो रहे हैं और जहाँतक मैं समझता हूँ, इस शहरमें इस ऋतुमें उन दो आमोंके अतिरिक्त और तीसरा कोई आम कहीं है नहीं। आम खानेकी मेरी इच्छा है और यह बात केवल मैं जानता हूँ और जानती है वह सर्वज्ञा श्रीमाँ। यदि वह मेरे किसीसे कुछ कहे बिना इस इच्छाकी पूर्ति कर दे, तब तो माँके प्यारका मुझे ज्ञान हो जाय।'

इसी प्रकार मन-ही-मन कहते मुझे नींद-सी आ गयी। अचानक मेरे कमरेका दरवाजा खुला। बिजली जल गयी, परिचित आवाज सुनकर मैं जगा तो देखता हूँ, मेरे आश्रमके ही एक बन्धु ठीक वैसे ही दो आम लिये खड़े हैं। अच्छी तरह मैं चेतमें भी नहीं आया था कि उन्होंने कहा—'माँजीने आपके लिये ये आम भेजे हैं और कहा है, इसे जल्दी दे आओ, तबतक मैं दूध गरम कर रही हूँ। आप इन्हें लीजिये, मैं दूध लेने जा रहा हूँ।'

आम मेरे हाथमें थे, वे दूध लेने चले गये। उनके लौटनेपर मैंने पूछा—'ये आम कहाँसे आ गये?'

उन्होंने बताया 'बम्बईसे पार्सल आया था। वैसे ही रखा था। शायद कल खोला जाता, पर वे अचानक उठकर पेटी खोलने लगीं। मैंने कहा, रात्रिमें क्या जरूरत है? कल खोलियेगा। तब बोलीं, 'नहीं, अभी खोलो।' मैं खोलने लगा। पेटी खुलते ही उन्होंने दो आम निकालकर कहा 'इन्हें अभी दुबेजीको दे आओ। तबतक मैं दूध गरम कर

कलकत्तासे अहमदाबाद आ रहे हैं तो मैंने घरमें कहा तुरंत दो आदमियोंका खाना तैयार करके पैक कर दो। मैं स्टेशन जाता हूँ, अगर गाड़ी नहीं निकली होगी तो उनसे भेंट हो जायगी। सब्जी-पूड़ी घरसे ली, बाजारसे मिठाई ली और जैसे ही प्लेटफार्म पहुँचा गाड़ी स्टेशनपर रुकी। आपका कोच और सीट-नम्बर मैंने नन्दूसे पूछ लिया था, सो आपसे भेंट हो गयी। ५-७ मिनट गाड़ी रुकी, बातें होती रहीं और गाड़ीने चलनेकी सीटी दी तो वे डिब्बेसे उतरकर चले गये और बोले—द्वारकाजी आयेंगे तब फिर साथ रहनेका मौका मिलेगा।

देती हूँ।'

मैं आश्चर्यचकित था। मेरी इच्छा और माँकी ममताकी परीक्षाकी वृत्तिका किसे ज्ञान था। इस घटनाकी स्मृतिसे मेरा विश्वास अत्यधिक दृढ़ इस कारण और होता है कि मैंने जिन माँजीकी चर्चा की है, उनके द्वारा बाहरसे आयी या घरकी ही किसी वस्तुको, विशेषतया मुझे ही भेजनेका अबतकके मेरे जीवनका वह प्रथम एवं अन्तिम अनुभव है और इस विश्वासके आधारपर जीवनपर दृष्टि डालनेपर सुस्पष्ट विदित होता है कि वह माँ सचमुच महिमामयी, सर्वशक्तिशालिनी, निखिल ब्रह्माण्डकी सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी ही नहीं है, वह अत्यन्त करुणामयी, स्नेहमयी और वात्सल्यमयी है। हमारी लौकिक-पारलौकिक सभी इच्छाओंकी पूर्ति करनेके लिये हमारे साथ छायाकी भाँति लगी हुई है।—शिवनाथ दुबे

(२)

चिन्तनका प्रभाव

सन् २००० ई०की बात है, मेरे एक परम स्नेही मित्रने द्वारकाजीमें द्वारकाधीशके मन्दिरमें श्रीमद्भागवत-कथाका आयोजन किया। वे श्रीद्वारकाधीशके परम भक्त हैं और हर महीने द्वारकाजी श्रीद्वारकाधीशके दर्शन करने जाते हैं।

कथाश्रवणके लिये मैं भी अपनी पत्नीके साथ रेलसे अहमदाबादके लिये चल पड़ा। दूसरे दिन दोपहरका समय हुआ तो गाड़ीमें हमें पता चला कि अगला स्टेशन सूरत आनेवाला है। पहले हमें मालूम नहीं था। दोपहरका समय था, भूख लगी तो याद आया कि सूरतमें तो मेरे उन परम स्नेही मित्रके चाचा रहते हैं, जिन्होंने कथाका आयोजन किया है। उनको फोन कर देते तो वे हमारे लिये स्टेशनपर खाना भेज देते। हमें रेलकी कैटरिंगका खाना अच्छा नहीं लगता और हम खाते भी नहीं हैं। लेकिन अब क्या उपाय? उस समय मोबाइल फोन भी नहीं थे, जो गाड़ीमें—से ही उनको फोन कर देते और न हमारे पास उनका फोन-नम्बर ही था।

परंतु जैसे ही गाड़ी सूरत स्टेशनपर रुकी, हमने देखा कि हमारे डिब्बेकी खिड़कीके सामने हमारे मित्रके चाचाजी हाथमें डिब्बे लिये दो आदमियोंके साथ खड़े हैं। वे अन्दर आये, हमने उन्हें प्रणाम किया और पास बैठे

तो हमने सबसे पहला प्रश्न उनसे यही किया कि आपका कैसे मालूम पड़ा कि हम इस गाड़ीसे अहमदाबाद जा रहे हैं? तो वे कहने लगे, मैं तो दुबई मोम लाने गया हुआ था। आज सुबह दुबईसे प्लेनद्वारा बम्बई आया और बम्बईसे गाड़ीसे सूरत दोपहर ११ बजे पहुँचा तो पहुँचते ही अहमदाबादसे नन्दू (मेरे मित्र)—का फोन द्वारकाजीमें कथामें आनेके लिये आया। बातों ही बातोंमें उनके मुँहसे निकल गया कि आज गाड़ीसे भैया और भाभी भी कलकत्तासे अहमदाबाद आ रहे हैं तो मैंने घरमें कहा तुरंत दो आदमियोंका खाना तैयार करके पैक कर दो। मैं स्टेशन जाता हूँ, अगर गाड़ी नहीं निकली होगी तो उनसे भेंट हो जायगी। सब्जी-पूड़ी घरसे ली, बाजारसे मिठाई ली और जैसे ही प्लेटफार्म पहुँचा गाड़ी स्टेशनपर रुकी। आपका कोच और सीट-नम्बर मैंने नन्दूसे पूछ लिया था, सो आपसे भेंट हो गयी। ५-७ मिनट गाड़ी रुकी, बातें होती रहीं और गाड़ीने चलनेकी सीटी दी तो वे डिब्बेसे उतरकर चले गये और बोले—द्वारकाजी आयेंगे तब फिर साथ रहनेका मौका मिलेगा।

जब गाड़ी चलने लगी तो मेरी पत्नी भोजनके डिब्बे खोलकर प्लेटोंमें भोजन डालने लगी और मैं सोचने लगा कि करीब ११ बजे जब हमें सूरत स्टेशनका पता चला तो हमने इन चाचाजी और इनके लड़कोंका चिन्तन किया। जैसे ही हमारे मनमें उनका चिन्तन शुरू हुआ, उसी समय वह चिन्तन उनके पास पहुँच गया तो फिर अगर हम मनकी भूखसे तड़पकर भीतर हृदयसे परमात्माका चिन्तन करें तो क्या वह चिन्तन परमात्माके पास नहीं पहुँच जायगा, जबकि परमात्मा अगले स्टेशन जितना दूर भी नहीं है वह तो हमारे भीतर ही है। जहाँसे हम उसका चिन्तन करते हैं, उसी स्थानपर वह विराजता है। वह सब समय हमारे साथ है, उसमें, हममें, सबमें है तो उसको हमसे मिलनेमें एक घण्टा भी कहाँ लगेगा। कमी केवल तड़पके साथ चिन्तन करनेकी है।

वास्तवमें चिन्तन एवं ध्यान की बड़ी महिमा है। सत्-तत्त्वके प्रति किया गया सच्चा चिन्तन अवश्य ही वहाँतक पहुँचाता है और ध्यानकी प्रगाढ़तामें तत्त्वका स्वरूप भी प्रकट हो जाता है।—शिवभगवान केजड़ीवाल

(३)

ईमानदारीकी मिसाल

घटना २७ नवम्बर सन् २००८ ई० की है। मेरी पुत्रीकी शादी २४ नवम्बर २००८ को हो गयी थी। २७ नवम्बरको मेरी पुत्री रेणू कँवर मेरे यहाँसे मेरी दूसरी पुत्री सुमनके साथ अपने ससुराल जयपुर जीपसे जा रही थी। मैंने उसके पर्समें २५०० रुपये, उसके कानकी बाली तथा अटैचीकी चाबी रखकर पर्स उसके हाथमें दे दिया। जीपमें पिछली सीटपर उसके पास सुमन बैठ गयी। जब श्रीमाधोपुरसे अजीतगढ़ राजमार्गपर जीप दौड़ रही थी तब रेणूके हाथसे पर्स गिर गया और उसको पता भी नहीं चला। अपने स्थानपर पहुँचनेके बाद रेणूको ख्याल आया तो वह बहुत ही घबड़ा गयी। उन लोगोंने जीपमें तलाश किया एवं मुझे फोन किया। हमलोगोंको भी चिन्ता हो गयी। अचानक दूसरे दिन रातको एक फोन आया कि भाई साहब! आपका पर्स गिर गया है क्या? जब हमने पूरी जानकारीके साथ बताया तब उन महानुभाव जिनका नाम बजरंगलाल शर्मा था, जो दिवराला गाँवके रहनेवाले थे, ने हमें अपने गाँव बुलाया। वहाँ जानेपर उन्होंने हमें बताया कि वे और उनके साथी मोटरसाइकिलसे जीपके पीछे-पीछे आ रहे थे, सो उन्होंने पर्स उठा लिया। पर्समें एक पर्चीपर फोन-नम्बर लिखा हुआ था। हमने निश्चय किया कि इस नम्बरपर फोन करनेसे पर्स किसका है जानकारी हो जायगी, जब हमने फोन किया तो आपसे सम्पर्क हुआ, कदाचित् फोन-नम्बर न मिलता तो हमलोग भी परेशान हो जाते कि इस रुपयों तथा आभूषणसे भरे पर्सका क्या करें। ऐसा कहकर उन्होंने पैसे एवं कानकी बालीके साथ हमें पर्स सही-सलामत लौटाया। उनकी ऐसी अच्छी नीयत देखकर हमें बहुत ताज्जुब हुआ कि आजके ऐसे कलिकालमें भी ईमानदार तथा कर्तव्यपरायण लोग मौजूद हैं, हमने उन्हें बार-बार धन्यवाद देते हुए पारितोषिकके रूपमें कुछ रुपये देने चाहे तो वे बोले—यह तो हमारा फर्ज था।—रामस्वरूपसिंह चौहान

(४)

वह हाड़-माँसका प्राणी कैसे बचा?

घटना दो दशक पूर्वकी है, श्रावणके उत्तरार्धमें अतिवृष्टिसे गाँव जलाप्लावित होनेसे टापूकी शकल ले चुका था। नन्दगाँवसे गिडोहका ३ कि० मी० डामर रोड ही आवागमनका एकमात्र माध्यम अवशेष था; परंतु इसको जोड़नेवाला सम्पर्क-मार्ग भी जलसे प्रभावित था।

प्रातःकाल मेरे दोनों अनुज ओमप्रकाश एवं गोविन्दराम तड़के ही अखाड़ेमें व्यायाम करके खेतोंकी ओर ट्रैक्टर लेकर निकल गये। खेतसे ट्रैक्टरमें खाली ट्राली लेकर लौट रहे थे। गाँवसे आधा फर्लांगकी दूरीपर प्राचीन हंसदेव मन्दिर है, वहाँ कुछ दूरतक एक फुट पानीसे होकर आना पड़ता था। वे प्रतिदिनकी भाँति लौट रहे थे, ट्राली खाली होनेसे इन्हें दुर्घटनाकी किंचित् आशंका नहीं थी; परंतु दुर्योग ही कहेंगे कि एक छोटेसे गड्ढेमें ट्रालीके पहियेके झटकेकी प्रतिक्रियासे अकस्मात् ट्रैक्टर ट्रालीके ऊपर उलटकर आ गया। मडगार्ड पर बैठे ओमप्रकाश तो छलाँग लगाकर सकुशल बच निकले; परंतु ड्राइवर गोविन्दरामकी स्थिति चिन्ता और आशंकायुक्त थी, वह ट्रैक्टरके इंजन और सीटके बीच फँस गया था। बड़ा भाई छोटे भाईको दुर्घटनाग्रस्त समझ सन्न रह गया, उसके पैरों तलेकी जमीन खिसक गयी। कुछ क्षणोंके लिये वे अवाक् रह गये। हड़बड़ाहटकी अप्रत्याशित स्थितिने उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। कुछ सूझ नहीं रहा था। आखिर क्या किया जाय! ओमप्रकाशका कहना है कि हम दोनों नवयुवक थे, यदि शेर भी आ जाय तो एक बार उसे भी टक्कर देनेका हमारा साहस था, दोनोंमें बराबरकी शक्ति; परंतु आश्चर्य कि मेरे मुँहसे आवाज भी नहीं निकल रही थी, मैं घिघिया गया, आखिर! यह क्या हुआ!! और मेरा छोटा भाई?... मैंने किसी प्रकार लोगोंको हादसेसे अवगत करानेहेतु लड़खड़ाते स्वरमें सहयोगकी गुहार लगायी। मेरे नेत्रोंमें आँसू और दिलमें धड़कन ही शेष थी, निर्बलके बल 'नन्दके लाला' का स्मरण किया। साहसके साथ ट्रैक्टरकी ओर कदम बढ़ाया, यह सोचकर कि पूर्वजोंके पुण्य-प्रताप एवं महापुरुषोंके आशीर्वादसे यदि कोई साँस मिल जाय! मैंने उसे नामसे सम्बोधित किया, तो उत्तरमें पाया कि मैं बिलकुल ठीक हूँ, ट्रैक्टर और गद्दीके बीच फँसा हुआ हूँ, घबड़ाना नहीं। अब तो मानो प्राण ही लौट आये हों, लोग दौड़कर आये, ट्रैक्टर सीधा किया सीट तो चकनाचूर हो गयी थी; परंतु ड्राइवर गोविन्दराम सकुशल था, उसे आहिस्तासे निकाला गया, आश्चर्य! कि उसके शरीरमें खरोंच भी नहीं आयी थी। लौहनिर्मित गद्दी तो टूट गयी; परंतु उस पर बैठा हाड़-माँसका प्राणी कैसे बचा? 'स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे' उक्ति रह-रहकर जीभपर डोलने लगी। सभी परिजनोंने भगवान्‌के प्रति अटूट निष्ठासे कृतज्ञता ज्ञापित की। उनकी कृपासे ही यह सम्भव हो सका था।—डॉ० हेतीलाल 'त्रिपाठी'

मनन करने योग्य

कर्ता एकमात्र भगवान्

सुलतान निजामुद्दीन मध्य भारतका सुलतान था। जो उसके पास आता, खाली हाथ नहीं लौटता था। इस दरियादिलीके साथ उसमें दाता होनेका अहं भी कूट-कूटकर भरा था। माँगनेवाले उसकी प्रशंसामें कहा करते थे, **‘जिसको नहीं दे भगवान्, उसे देता है सुलतान।’** अपनी झूठी प्रशंसासे प्रसन्न होकर वह माँगनेवालोंको इतना धन देता था कि उन्हें दुबारा न माँगना पड़े।

मध्यभारतमें उन्हीं दिनों एक साधु बाबा थे। सभी उन्हें बाबा मस्तराम कहकर पुकारते थे। बाबा रोज भिक्षा माँगने निकलते थे। कुछ लोगोंने बाबा मस्तरामसे कहा—बाबा! रोज-रोज भिक्षा माँगनेका चक्कर खत्म करो। एक दिन जाकर सुलतानसे माँग लो। बस, आपको सिर्फ उसके द्वारपर पहुँचकर इतना ही तो पुकारना है, **‘जिसको नहीं दे भगवान् उसे देता है सुलतान।’**

स्वभावसे फक्कड़ बाबा यह सुनकर जोरसे हँस पड़े और कहने लगे—पागल है वह। लगता है, उसे अपने-आपपर भारी घमण्ड हो गया है। भला, वह है कौन किसीको देनेवाला? अरे! जिसे नहीं दे भगवान्, उसे क्या देगा सुलतान?

बाबाकी बात धीरे-धीरे सुलतानतक पहुँच गयी थी। उनकी बातें सुलतानको अच्छी नहीं लगीं। उसे लगा जैसे बाबा मस्तराम उसका मखौल उड़ा रहे हैं। आखिरकार सुलतानने एक योजना बनायी।

योजनाके अनुसार सुलतानने गाँववालेका वेष बनाया। बैलगाड़ीमें तरबूज भरे और उधर जाकर बैठ गया, जिधरसे बाबा मस्तराम भिक्षा माँगने जाया करते थे। थोड़ी देरमें बाबा मस्तराम भिक्षा लेने निकले। जब वे तरबूजवालेके पास पहुँचे, तो उसने आदरसहित बाबाको छाँटकर अच्छा-सा तरबूज भिक्षामें दे दिया।

बाबा तरबूजको लेकर वापस लौट चले। उन्होंने तरबूज एक तरफ रखा और भजन-पूजनमें बैठ गये। कुछ देरमें एक राहगीर विश्रामके लिये बाबाकी झोपड़ीमें आ गया।

संयोगवश राहगीरके पास भी एक तरबूज था। लेकिन उसका तरबूज बाबाके तरबूजसे बहुत छोटा था। बाबाके तरबूजको देखकर वह मन-ही-मन सोच रहा था, काश! इतना बड़ा तरबूज मेरे पास होता। मैं ठहरा परिवारवाला। इस छोटे-से तरबूजसे किस तरह काम चलेगा, वैसे भी इतने बड़े तरबूजका साधु बाबा क्या करेंगे?

राहगीर तो यह सोच ही रहा था, बाबा उसके मनकी बात जान गये थे। सो बोले—भाई! यह तरबूज तुम ले जाओ और अपनावाला छोटा तरबूज मुझे दे दो। यह सुनकर राहगीर चौंका। बोला—नहीं बाबा! भला, मैं आपका तरबूज कैसे ले सकता हूँ?

बाबा मस्तरामने हँसते हुए कहा—संकोच नहीं करो, बेटा! मैं तो अकेला फक्कड़ हूँ। तुम बाल-बच्चेवाले हो? इसे

तुम ले जाओगे तो बच्चोंसहित मजेसे खाओगे। मेरा काम तो छोटेवाले तरबूजसे भी चल जायगा। बाबाके इतना कहनेपर उसने तरबूज लेना मंजूर कर लिया। तरबूजको लेकर अपने घर चला गया।

भोजनके समय बाबाने तरबूज काटा। तरबूज बहुत मीठा था। बाबाके लिये पर्याप्त था, उधर कुछ देरमें राहगीर भी अपने घर पहुँच गया। इतना बड़ा और अच्छा तरबूज देखकर घरके सभी सदस्य प्रसन्न थे। सब-के-सब तरबूज खाने बैठे। तरबूजको चाकूसे काटा गया। मगर अन्दरसे तरबूजको देखकर वे हैरान रह गये।

तरबूजमें हीरे-मोती, जवाहरात छिपे हुए थे। इतनी दौलत तो उन्होंने कभी देखी भी नहीं थी। जब उन्होंने तरबूजको ध्यानसे देखा, तो समझ गये कि सफाईपूर्वक तरबूजको खोखलाकर उसमें धन भर दिया गया था। हाँलाकि उन लोगोंकी तरबूज खानेकी इच्छा पूरी नहीं हुई थी, पर वे प्रसन्न थे। आखिर एक गरीब परिवारको एकाएक इतना धन मिल गया था। वे इसे साधु बाबाकी कृपा मान रहे थे।

दूसरे दिन मस्तराम बाबा फिर भिक्षा माँगते हुए उस तरबूजवालेकी तरफ चले गये। बाबाको भीख माँगते देखकर वह चौंका। उसने बाबासे कहा—लगता है आपको भीख माँगनेकी आदत ही पड़ चुकी, अन्यथा इतना धन मिलनेके बाद भी कोई भीख माँगता है? कौन-सा धन? बाबाने हैरानीसे पूछा।

वही धन, जो मैंने तुम्हें कल दिया था।

कल तुमने मुझे तरबूज अवश्य दिया था, पर कोई धन नहीं।

अपना असली परिचय देते हुए सुलतानने कहा—मैंने कल जो तरबूज दिया था, उसमें बेशुमार दौलत थी। इतनी दौलत कि जीवनभर खर्चा करो, तो भी समाप्त नहीं होती। मैं आज इसीलिये बैठा हूँ कि तुम अब भी भिक्षा माँगते हो क्या, यह जान सकूँ।

बाबा मस्तराम सबकुछ जान चुके थे। वे हँसते हुए सुलतानसे बोले—**‘जिसे नहीं दे भगवान्, उसे क्या देगा सुलतान।’** मनमें घमण्ड नहीं लाओ सुलतान—देनेवाला ईश्वर है। सुलतानकी क्या हस्ती जो उसकी मर्जीके बिना किसीको कुछ दे दे? यदि तुम देते हो तो ईश्वरकी मर्जीसे ही देते हो। यह कहते हुए बाबा मस्तरामने तरबूज बदलनेवाली सम्पूर्ण घटना कह सुनायी। वे बोले कि धन तरबूजमें भरकर मेरे माध्यमसे राहगीरको देनेके लिये ईश्वरका आदेश था। सो तुमने पूरा किया।

सुलतान समझ गया कि उसने कितना बड़ा भ्रम पाल रखा है एवं उसे समझमें आ गया कि कर्ता एकमात्र भगवान् ही है, कर्मके माध्यम भले ही अनेक हों। [अखण्ड ज्योति]

[प्रेषक—श्रीलखीरामजी अग्रवाल]